महाकवि कालिदास रचित

कुमारसंभव

हिन्दी भावानुवाद

भाषान्तरकार

विराज एम० ए०

प्रकाशक—

राजपाल एण्ड सन्ज

कश्मीरी गेट

दिल्ली.

Durga Sah Municipal Library,

NAINITAL.

दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी

नैनीताल

Class No. ....

Book No. ....

Received on ....

मूल्य

तीन रुपया

मुद्रक—

एल्बियन प्रेस

कश्मीरी गेट

दिल्ली

भूमिका

संस्कृत साहित्य में कालिदास का स्थान अद्वितीय है। उनकी रचना के विलक्षण सौन्दर्य को उनके पश्चात्वर्ती सभी टीकाकारों ने, आलोचकों ने तथा सहृदय पाठकों ने मुक्तकंठ से सराहा है। निस्सन्देह ही कविता का जैसा मनोरम रूप कालिदास की रचनाओं में प्रस्फुटित हुआ है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। इसीलिये आश्चर्य नहीं कि उनके विषय में अनेक परवर्ती कवियों ने अनेक प्रशंसासूचक उक्तियां लिखी हैं। उदाहरण के लिये सोड्ढल कवि ने कालिदास की प्रशंसा करते हुए कहा है :

'वह कवि कालिदास धन्य हैं जिनकी पवित्र और अमृत के समान मधुर कीर्ति वाणी का रूप धारण करके सूर्य वंश रूपी समुद्र के परले पार तक पहुँच गई है।'

ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधास्वादुमती च यस्य ।
वाणीमिषाच्चंडमरीचिगोत्रसिन्धोः परं पारमवाप

इसी प्रकार भरत चरित के लेखक श्री [illegible] कवि ने क
की वाणी की प्रशंसा करते हुए [illegible] की भाँति निर्दोष तथा मोतियों की [illegible] भाँति अनेक गुणों से युक्त और प्रियतमा की गोद की भाँति [illegible] वाणी कालिदास के सिवाय अन्य किसी की नहीं है।'

अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः ।
प्रियाकपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी ।।

जयदेव कवि ने कालिदास की अन्य संस्कृत कवियों के साथ गणना करते हुए कालिदास को कविता-कामिनी का विलास बताया है और कालिदास को कविकुल गुरु कहा है। उन्होंने लिखा है कि 'जिस कविता-सुन्दरी का केश-कलाप चोर कवि है और जिसके कर्णफूल का स्थान मयूर कवि ने लिया हुआ है, जिसका हास भास कवि है और कविकुल गुरु कालिदास जिसके विलास हैं, हर्ष कवि जिसके हर्ष हैं और हृदय में रहने वाला पंचवाण अर्थात् कामदेव वाण कवि है, वह कविता सुन्दरी किस व्यक्ति को आनन्दित न कर देगी।'

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरः ।
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पंचवाणस्तु वाणः,
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ।।

इसप्रकार अनेक लेखकों ने अपनी श्रद्धांजलि कालिदास को अर्पित की है। यहां तक कि संस्कृत गद्य के प्रसिद्ध लेखक बाणभट्ट ने भी कालिदास [illegible] सूक्तियों की प्रशंसा की है। कालिदास के महत्व के विषय [illegible] में दो मत नहीं है। सर्वसम्मति से उन्हें संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ [illegible] [illegible]ना गया [illegible]

कालिदास स्थान [illegible]

परन्तु यह [illegible] की बात है कि संस्[illegible] सबसे बड़े कवि के विषय में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं है [illegible] अनेक कृतियों में

अपने विषय में कवि ने एक पंक्ति तो दूर एक शब्द भी नहीं लिखा है और उनके विषय में इधर-उधर जो कुछ लिखा मिलता है उससे ऐतिहासिक दृष्टि से किसी निश्चय पर पहुँचने में कुछ सहायता नहीं मिलती। बल्कि कई जगह तो समस्या और उलझ जाती है।

कालिदास के काल के विषय में निश्चय करने के लिये हमारे पास सबसे बड़ा आधार विक्रमादित्य का है। क्योंकि अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रारम्भ में कवि ने सूत्रधार के मुख से कहलाया है कि 'रस और भावों के पारखी महाराज विक्रमादित्य की इस सभा में आज बड़े-बड़े विद्वान् उपस्थित हैं और इसके सम्मुख हमें कालिदास द्वारा रचे गये अभिज्ञान शाकुन्तल नामक नये नाटक का अभिनय करना है।' इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि अभिज्ञान शाकुन्तल का अभिनय महाराज विक्रमादित्य की सभा में किया गया था और कालिदास विक्रमादित्य के समकालीन थे।

इसके अतिरिक्त कालिदास ने एक नाटक विक्रमोर्वशीय लिखा है, जिससे कालिदास का विक्रमादित्य के प्रति अनुराग प्रकट होता है। परन्तु यह निश्चय हो जाने पर भी कि कालिदास विक्रमादित्य की सभा में विद्यमान थे, समस्या का पूरा [illegible] नहीं होता। क्योंकि स्वयं इन विक्रमादित्य के सम्बन्ध में विद्वानों [illegible] चर्चा है। कुछ लोग को ५७ ईस्वी पूर्व में हुआ मानते हैं तो गुप्त [illegible] द्वितीय विद्वान् चौथी शताब्दी और कुछ छठी शताब्दी तक। इस

फर्ग्युसन का मत

इन विद्वानों [illegible] एक फर्ग्यूसन हैं जिनका कथन है कि ५४४ ईस्वी में उज्जैन में एक राजा हर्ष हुए थे जिनकी उपाधि विक्रमादित्य

थी। उन्होंने कहरूर की लड़ाई में शकों को परास्त किया था और इस विजय की स्मृति को स्थायी बनाने के लिये उन्होंने एक सम्वत् चलाया। परन्तु उस सम्वत् को उन्होंने और प्राचीन बनाने के लिए ६०० वर्ष पहले से चलाया और उसका प्रारम्भ ५७ ईस्वी पूर्व से गिना। फर्ग्यूसन की युक्ति यह है कि कालिदास के ग्रन्थों में हूण, शक, पल्लव तथा यवन जातियों के नाम आते हैं। अतः कालिदास उस समय हुए होंगे, जबकि ये जातियां भारत में आ चुकी थीं। हूणों के आक्रमण भारत पर ५०० ईस्वी में प्रारम्भ हुए।

यदि फर्ग्यूसन के मत को सत्य माना जाय तो यह बात समझ में नहीं आती कि हर्ष विक्रमादित्य ने अपना संवत् ६०० वर्ष पूर्व से क्यों चलाया? एक तो किसी भी संवत् को अपने समय से पहले से प्रारम्भ करना असंगत प्रतीत होता है। फिर, यदि पहले से भी प्रारम्भ करना था तो उसके लिये ६०० वर्ष पहले का समय ही क्यों चुना गया? इससे भी बड़ी एक बात यह है कि यदि विक्रम संवत् जिसे मालव संवत् भी कहा जाता है, प्रारम्भ में ६०० वर्ष पहले से शुरू किया गया था तो ६०० से कम मालव संवत् का कहीं उल्लेख नहीं मिलना चाहिये। परन्तु मन्दसौर का प्रस्तर लेख ५२९ मालव संवत् का, तथा काबी का अभिलेख ४३० विक्रम संवत् का प्राप्त होता है। इससे फर्ग्यूसन का मत [illegible] निराधार और कल्पना की बेतुकी उड़ान मात्र सिद्ध होता है। सच तो यह है कि हूण और शक जातियों का वर्णन रघुवंश में [illegible]; परन्तु कहीं भी वे भारतवर्ष में विजेता के रूप में चित्रित नहीं हुए हैं। उनका [illegible] जातियों के अन्तर्गत किया गया है, जिन्हें रघु ने अपनी दिग्विजय [illegible] परास्त किया था; और यह बात इतिहास सिद्ध है कि ईसा से दो शताब्दी पहले ही हूण पामीर के उत्तर में आ गये थे। इसलिये हूणों और शकों के वर्णन से

कालिदास के काल के विषय में कोई निश्चायक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता ।

गुप्तकालीन मत :

अन्य यूरोपियन विद्वानों का मत यह है कि कालिदास के आश्रयदाता विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय थे, जिनका समय ३७५ से ४१३ ईस्वी तक माना जाता है। गुप्तकाल भारत के लिये शान्ति और समृद्धि का काल था । यह भारत का स्वर्णकाल कहा जाता है । कालिदास के ग्रन्थों में सर्वत्र सुख और समृद्धि की दशा का ही वर्णन मिलता है । इससे कालिदास गुप्तकालीन अर्थात् ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त में हुए सिद्ध होते हैं । इस पक्ष के समर्थन में कई बातें कही जाती हैं । पहली बात तो यह कही जाती है कि मालव सम्वत् पहले से चला आ रहा था । उसे चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रम सम्वत् के नाम से प्रचारित किया । चन्द्रगुप्त के पुत्र का नाम कुमार गुप्त था । कहा जाता है कि कालिदास के महाकाव्य कुमारसम्भव की रचना शायद कुमारगुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में ही की गयी होगी । यह भी कहा जाता है कि चौथी शताब्दी में हरिषेण ने जो चन्द्रगुप्त की प्रशस्ति लिखी थी, उसके विजय वर्णन तथा रघुवंश में वर्णित रघु की दिग्विजय में बहुत समानता है । इससे स्पष्ट है कि कालिदास समुद्रगुप्त के पश्चात् चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में ही रहे होंगे । एक और बात यह है कि प्रसिद्ध विक्रमादित्य 'शकारि' के रूप में प्रख्यात है । शकों को चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भारत से बाहर खदेड़ा था । इसलिये भी चन्द्रगुप्त द्वितीय को कालिदास का आश्रयदाता विक्रमादित्य मानना उचित है । इस पक्ष के समर्थन में यहाँ तक कहा गया है कि कालिदास ने अपने काव्यों में 'गुप्' धातु का प्रयोग कई जगह किया है; जिससे उनका गुप्तवंश के प्रति स्नेह प्रकट होता है और कई जगह उन्होंने 'चन्द्र' तथा 'इन्दु' शब्दों का प्रयोग

किया है, जिससे वे चन्द्रगुप्त की ओर संकेत करते जान पड़ते हैं। इस मत के समर्थक कीथ इत्यादि हैं।

परन्तु यदि इस मत की सूक्ष्मता से परीक्षा की जाय तो यह उतना सुदृढ़ सिद्ध नहीं होता, जितना यह पहले-पहल दिखाई पड़ता है। पहली बात तो यह है कि गुप्तों का अपना संवत् था, जिसे गुप्तवंश के प्रवर्तक चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्रारम्भ किया था। बाद के गुप्त राजा इसी संवत् का प्रयोग करते रहे। स्कन्दगुप्त का जो शिला लेख गिरनार में मिला है, उसमें गुप्त संवत् से ही गणना की गई है। यहाँ तक कि नौवीं शताब्दी से पहले विक्रम संवत् का प्रयोग बहुत कम मिलता है। फिर चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी सम्राट् ने यदि सम्वत् ही चलाना होता, तो वह अपना अलग ही सम्वत् चलाता। अपना नाम मालव संवत् के साथ न जोड़ता।

इसके अतिरिक्त और भी महत्वपूर्ण बात यह है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिये 'विक्रमादित्य' केवल उपाधि थी। उसका असली नाम विक्रमादित्य नहीं था। अवश्य ही उससे पहले कोई ऐसा लोकप्रिय प्रसिद्ध नरेश विक्रमादित्य हो चुका था, जिसको सब जगह प्रशंसनीय माना जाता था और उसी के अनुकरण में लोग अपने नाम के साथ विक्रमादित्य उपाधि लगाना चाहते थे। कालिदास के ग्रन्थों में, जो प्रसंग समुद्रगुप्त की दिग्विजय से मिलते-जुलते बताये जाते हैं, उनके विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। अनेक विद्वान् यह समझते हैं कि उनके अर्थ अलग-अलग ढंग से करने पर उनमें काफी अन्तर पड़ जाता है जिससे कुछ भी सुनिश्चित ऐतिहासिक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। ी प्रकार 'गुप्' धातु के प्रयोग से गुप्तवंश, 'इन्दु' और 'चन्द्र' शब्दों प्रयोग से चन्द्रगुप्त तथा 'कुमारसम्भव' से कुमार गुप्त का अर्थ

निकालना अनुचित खींचातानी करना है। इस प्रकार की खींचातानी से तो अर्थ का अनर्थ किया जा सकता है।

५७ ईस्वी पूर्व का मत :

इस मत के अनुसार विक्रमादित्य ईसा से ५७ वर्ष पूर्व हुए थे। उनके नाम से चला आ रहा विक्रम संवत् इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है। वह उज्जयिनी के राजा थे और उन्होंने शकों को परास्त किया था। बहुत समय तक इतिहासवेत्ता लोग यह मानते थे कि ५७ ईस्वी पूर्व में उज्जयिनी में कोई बड़ा प्रतापी शासक नहीं हुआ। परन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि कालिदास के आश्रयदाता परमार वंशी विक्रमादित्य थे। इनके पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। इन विक्रमादित्य का वर्णन 'कथा सरित्सागर', 'वैताल पंचाशतिका' और 'द्वात्रिंशत् पुत्तलिका' इत्यादि कथाओं मे मिलता है। यद्यपि इनमें से अनेक कथाएँ विक्रमादित्य का गौरव बढ़ाने के लिये ही लिखी गई थीं, परन्तु उनसे इतना तो निश्चित हो जाता है कि उस समय विक्रमादित्य नाम के कोई प्रतापी लोकप्रिय राजा थे। यह विक्रमादित्य शैव थे। इनके पिता ने उज्जैन में महाकाल के मन्दिर का निर्माण करवाया था। जब शकों ने अपना पहला आक्रमण किया, तब विक्रमादित्य ने उन्हें परास्त किया था। इससे कालिदास के शैव होने की भी पूरी संगति बैठ जाती है। कालिदास ने अपने सभी ग्रन्थों में शिव की अत्यधिक भक्ति प्रदर्शित की है। गुप्त सम्राट् शैव नहीं थे, बल्कि वैष्णव थे। इसलिये कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन मानना संगत नहीं।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' के प्रारम्भ में कालिदास ने विक्रमादित्य का स्पष्ट ही उल्लेख किया है, साथ ही इन्द्र के लिये 'महेन्द्र' शब्द का ही व्यवहार किया गया है। सम्भवतः विक्रमोर्वशीय नाटक का अभिनय उस समय

किया गया था जब महेन्द्रादित्य ने विक्रमादित्य को राजसिंहासन पर बैठाया था।

'कथासरित्सागर' में विक्रमादित्य का काफी विस्तृत वर्णन है। 'कथा-सरित्सागर' गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' के आधार पर लिखा गया है और 'बृहत् कथा' अब प्राप्त नहीं होती। गुणाढ्य स्वयं विक्रमादित्य के आस पास के समय में ही हुए थे, इसलिये उनके द्वारा दी गई विक्रमादित्य सम्बन्धी जानकारी को पर्याप्त प्रामाणिक माना जा सकता है। इस प्रकार अधिक विश्वसनीय मत यही प्रतीत होता है कि कालिदास ईस्वी पूर्व पहली शताब्दी में परमार वंशीय महाराज विक्रमादित्य के आश्रय में विद्यमान थे। विक्रमादित्य की राजधानी उज्जैन थी। कालिदास का भी इस उज्जयिनी नगरी के प्रति अत्यधिक अनुराग दृष्टिगोचर होता है।

इस विषय में दो बातें और उल्लेखनीय हैं। एक बात यह कही जाती है कि कालिदास के ग्रन्थों में ज्योतिष सम्बन्धी कई बातें कही गई हैं और ज्योतिष भारतवासियों ने यूनान और रोम से सीखा था। इसलिये कालिदास का काल यूनानियों के भारत आने के पश्चात् होना चाहिये। परन्तु यह तर्क कुतर्क है। क्योंकि कालिदास से बहुत पहले और यूनानियों के आगमन से निश्चित रूप से पहले लिखे गये वाल्मीकि रामायण में ज्योतिष के अनेक संकेत मिलते हैं। ज्योतिष शास्त्र यूना-नियों ने स्वयं बैबीलोनिया के निवासियों से सीखा था और यदि भारत-वासियों ने ज्योतिष शास्त्र किसी विदेशी से सीखा भी हो, तो वह सीधा बैबीलोनिया अथवा ईरान के निवासियों से सीखा होगा और यूनानी लोग भी तो भारत में ईसा से चार शताब्दी पहले ही आने जाने लगे थे। इसलिये केवल इस आधार पर कालिदास का समय पीछे की ओर घसीटना संगत नहीं।

दूसरी युक्ति यह दी जाती है कि कालिदास और अश्वघोष की रचनाएं परस्पर बहुत मिलती-जुलती हैं। इस बात को भी सब लोग मानते हैं कि कालिदास की रचना अश्वघोष की रचना की अपेक्षा अधिक अच्छी है। अश्वघोष का समय ईसा की पहली शताब्दी में कनिष्क के राज्यकाल में माना जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि अश्वघोष ने पहले काव्य रचना की और कालिदास ने उसके बाद उसका अनुकरण करते हुए अपनी शैली को और सजा-संवार कर परिष्कृत किया। परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि यदि कोई कवि पहले हुआ हो, तो उसकी रचना खराब होगी और कोई कवि बाद में हुआ हो, तो उसकी रचना अवश्य ही अच्छी होगी। यदि और अन्य सब बातों पर ध्यान दिया जाय तो यही प्रतीत होता है कि अश्वघोष ने कालिदास से प्रेरणा ग्रहण की; परन्तु उसका सफल अनुकरण न कर पाये।

कालिदास की रचनाएँ :

यों तो कालिदास की लिखी हुई ३५ के लगभग रचनाएँ बताई जाती हैं। परन्तु प्रमाणिक रूप से कालिदास की रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

नाटक—अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र।

महाकाव्य—कुमारसम्भव और रघुवंश।

काव्य—ऋतुसंहार और मेघदूत।

कुमारसम्भव महाकाव्य है :

कालिदास ने दो महाकाव्य लिखे हैं। इनमें से रचना की प्रौढ़ता

की दृष्टि से रघुवंश उत्कृष्ट है। परन्तु काव्य-सौन्दर्य की ताजगी की दृष्टि से कुमारसम्भव के पहले आठ सर्ग अधिक अच्छे कहे जा सकते हैं। कुमारसम्भव महाकाव्य है।

महाकाव्य के लिये संस्कृत आचार्यों ने उसमें निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक माना है :

महाकाव्य सर्गों में बँटा होना चाहिये। उसका एक नायक होना चाहिये, चाहे वह देवता हो अथवा कुलीन वंश में उत्पन्न क्षत्रिय हो। वह धीर और उदात्त गुणों से युक्त होना चाहिये या एक वंश में उत्पन्न हुए अनेक उच्च कुलीन राजा भी नायक हो सकते हैं। महाकाव्य में श्रृङ्गार, वीर या शान्त इनमें से एक रस प्रधान होना चाहिये। गौण रूप से इसमें सब रस और सब नाटक-सन्धियाँ प्रयुक्त की जानी चाहियें। इसकी कथा इतिहास प्रसिद्ध होनी चाहिये अथवा किसी श्रेष्ठ व्यक्ति को आधार बनाकर कल्पित कथा भी लिखी जा सकती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनमें से किसी एक की प्राप्ति उस नाटक का फल होनी चाहिये। प्रारम्भ में नमस्कार, आशीर्वाद अथवा कथावस्तु का उल्लेख होना चाहिये। बीच-बीच में कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा होनी चाहिये। एक सर्ग में एक ही छन्द रहना चाहिये और सर्ग के अन्त में किसी अन्य छन्द के पद्य होने चाहियें। सर्ग न बहुत छोटे हों और न बहुत बड़े महाकाव्य में आठ से अधिक ही सर्ग होने चाहियें। कोई-कोई सर्ग कई छन्दों में भी लिखा हुआ हो सकता है। सर्ग के अन्त में आगे होने वाली कथा का संकेत रहना चाहिये। महाकाव्य में सन्ध्या काल, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, ब्राह्म-मुहूर्त, अन्धकार, दिन, प्रभात, दुपहरी, शिकार, पहाड़, ऋतु, वन और सागर का वर्णन होना चाहिये। संयोग श्रृङ्गार और वियोग श्रृङ्गार,

कालिदास ने अवसर के अनुकूल भाषा बनाने और छन्द का चुनाव करने का ध्यान सब जगह रखा है।

इसके साथ ही कालिदास अनेक जगह विस्तृत वर्णन न करके संक्षिप्त व्यंजना द्वारा काम चला लेते हैं और व्यंजना के कारण भाव की अनुभूति और भी गम्भीर और मनोरम हो उठती है; जैसे, पार्वती महादेव के सम्मुख पहुँची और कामदेव के बाण के फलस्वरूप महादेव ने कुछ विचलित होकर उसके बिम्बाधरों से युक्त मुख की ओर देखा। अब कालिदास द्वारा चित्रित पार्वती का चित्र देखिये। 'पार्वती के अंग खिलते हुए छोटे-छोटे कदम्ब पुष्पों की भांति हो उठे, जिससे उसके मन का भाव प्रकट हो उठा। वह आंखें तिरछी करके जरा-सा मुंह फेर कर खड़ी हो गई, जिससे उसका मुंह और भी सुन्दर दिखाई पड़ने लगा।'

यहां पर प्रिय की सप्रेम दृष्टि के सम्मुख लजाई हुई, तिरछी होकर खड़ी हुई प्रियतमा का चित्र है। परन्तु जिसने कदम्ब का फूल नहीं देखा है, वह एकाएक इसके सौन्दर्य को ग्रहण नहीं कर सकेगा। कदम्ब का फूल गेंद के समान गोल होता है और उस पर सब ओर सैंकड़ों, हजारों अंकुर से निकले हुए होते हैं। जब कदम्ब का फूल खिलता है, तो सब ओर निकले हुए ये अँकुर खिल उठते हैं। यहां पर पार्वती के शरीर की तुलना खिलते हुए कदम्ब पुष्प से करने का प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार कदम्ब पुष्प के ऊपर अंकुर से खड़े रहते हैं, उसी प्रकार पार्वती के सारे शरीर पर रोयें खड़े हो गये। यह रोमांच उनके प्रेम भाव का व्यंजक है। इस प्रकार इस एक श्लोक में ही हमें न केवल पार्वती के बाह्य रूप का दर्शन हो जाता है, बल्कि उसके मन की भी एक झलक मिल जाती है, जिसे शब्दों द्वारा कालिदास ने नहीं कहा। इस प्रकार की व्यंजना के

प्रयोग कालिदास में बहुत हैं और यह व्यंजनाप्रधान काव्य ही श्रेष्ठ काव्य माना जाता है।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में अलंकारों का यथेष्ठ प्रयोग किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, संदेह, भ्रान्ति और तद्गुण इत्यादि अनेक अलंकार उनकी रचनाओं में बार-बार प्रयुक्त हुए हैं परन्तु कालिदास उस युग के कवि थे, जिसमें अलंकार साधन थे साध्य नहीं। उनकी रचना में ऐसा अलंकार ढूंढ़ पाना कठिन होगा, जिसका प्रयोग केवल अलंकार प्रदर्शन के लिये किया गया हो। वस्तुतः कालिदास की कविता सुन्दरी अपने-आप में इतनी सुन्दर है कि उसे अलंकारों की कोई आवश्यकता नहीं है। इसीलिये कहीं-कहीं कालिदास की कविता अलंकार शून्य होने पर भी बहुत सुन्दर बनी है। बिना अलंकारों के ही उन्होंने व्यंजना द्वारा अपना भाव व्यक्त कर दिया है। जैसे जब सप्तर्षि हिमालय के पास महादेव के लिए पार्वती की याचना करने गये और उन्होंने अपनी बात हिमालय से कह दी, उस समय कालिदास लिखते हैं कि 'जब देवर्षि अंगिरा यह सब कह चुके तो उस समय पार्वती अपने पिता के पास मुंह झुकाये अपने कमल की पंखुरियां गिनने लगी।' यहां पर अलंकार न होने पर भी पार्वती के मनोभाव की रमणीय अभिव्यक्ति हो गई है। उसकी लज्जा, प्रेम और हार्दिक आनन्द तथा उस आनन्द को छिपाने का प्रयत्न सभी स्पष्ट हो उठे हैं।

फिर भी कालिदास ने अपनी कविता सुन्दरी के कलेवर को सजाने के लिए अलंकारों के प्रयोग में कमी नहीं की है और उनके ये अलंकार सच्चे हीरों और मोतियों की भांति जगमगाते हुए आभूषण हैं। सभी जगह उन्होंने काव्य सौन्दर्य की वृद्धि में सहायता दी है। केवल संदेह का एक उदाहरण देखिये . 'उस बड़े-बड़े नयनों वाली पार्वती की चंचल

चितवन वायु से हिलते हुए नील कमलों के समान थी। यह पता नहीं चलता था कि वह उसने हरिणों से ली थी अथवा हरिणियों ने उससे?"

इस एक छोटे से अलंकार से पार्वती की काली आंखों और चंचल चितवन का जैसा सुन्दर चित्रण हुआ है वैसा शायद अन्य अलंकारों द्वारा न हो सकता। परन्तु अलंकारों के मनोहारी प्रयोग के उदाहरण कालिदास में इतने अधिक हैं कि यदि उन सब का संग्रह और स्पष्टीकरण किया जाय तो कालिदास की रचनाओं से कई गुना अधिक मोटा पोथा तैयार हो जाय।

कालिदास की उपमा :

कालिदास अपनी उपमाओं के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। हम यह किसी प्रकार मानने को तैयार नहीं हैं कि उपमा ही कालिदास की सबसे बड़ी विशेषता है। परन्तु इतना अवश्य सत्य है कि उपमाओं के चुनाव में जैसी सूझ और विवेक कालिदास ने प्रदर्शित किया है, वैसा संस्कृत में अन्य किसी कवि ने नहीं किया। वस्तुतः जिस कवि ने भी कालिदास की उपमाओं की विशेष रूप से प्रशंसा की है उसका आशय उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं, दोनों से ही रहा होगा।

कालिदास की उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं प्रायः प्रकृति में से चुनी गई होती हैं और उनमें उपमान का उपमेय के साथ ऐसा चमत्कारपूर्ण सादृश्य होता है कि पाठक एकाएक चमत्कृत तो हो ही उठता है साथ ही उसका मन एक स्थायी आह्लाद से भी भर उठता है। स्थायी आह्लाद से हमारा अभिप्राय यह है कि उपमा का चमत्कार केवल नवीनता के कारण आकर्षक प्रतीत नहीं होता बल्कि उपमेय और उपमान में कुछ सरस साम्य के कारण वह निरन्तर

आकर्षक बना रहता है। इसीलिये उनकी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं को हर बार नये सिरे से पढ़ने पर नये आनन्द की अनुभूति होती है, जो उस दशा में कभी न होती, यदि कालिदास की उपमाएं केवल कुतूहलजनक चमत्कार पर आधारित रहतीं। इन उपमाओं को गिनना तो बहुत विशाल कार्य है, फिर भी हम उनकी कुछ उपमाओं का उल्लेख करते हैं जो कुमारसम्भव में प्रयुक्त हुई हैं और विशेष रूप से सुन्दर हैं। पार्वती के नवयौवन से उभरते हुए शरीर की उपमा देते हुए कालिदास कहते हैं कि 'वह शरीर ऐसे निखर उठा, मानो तूलिका से कोई चित्र निखार दिया हो या सूर्य की किरणों को छूकर कोई कमल खिल उठा हो।' इसी प्रकार समाधि में बैठे हुए महादेव की उपमा देते हुए कालिदास ने लिखा है: 'वह ऐसे मेघ की भांति शान्त थे, जो तुरन्त बरसने वाला नहीं है। वह तरंगहीन समुद्र की भांति और वायुहीन स्थान में जल रही निष्कम्प दीपशिखा की भांति शान्त बैठे थे।' 'पार्वती के मुख को देखकर महादेव उसी प्रकार विचलित हो उठे जैसे पूर्णचन्द्र को उदित होते देखकर समुद्र विक्षुब्ध हो उठता है।' विवाह के लिये नये रेशमी वस्त्र पहने हुए पार्वती की उपमा देते हुए कालिदास ने लिखा है, 'वह नये रेशमी वस्त्र पहन कर ऐसे सुशोभित हो उठी, मानो झाग से भरी हुई क्षीरसमुद्र की लहर हो अथवा पूर्णचन्द्र से जगमगाती हुई शरद् ऋतु की रात हो।' जब महादेव को हिमालय के अन्तःपुर के सेवक वधू पार्वती के समीप ले गये तब उसकी उपमा देते हुए कालिदास कहते हैं कि 'रेशमी वस्त्र धारण किये हुए महादेव को सेवक उसी प्रकार वधू के पास ले गये, जैसे चन्द्रमा की किरणें झाग से भरे हुए समुद्र को किनारे तक ले आती हैं।' इत्यादि।

कालिदास का प्रकृति वर्णन :

यों तो कालिदास ने अपनी सभी रचनाओं में न केवल अपने

प्रकृति प्रेम का, बल्कि सूक्ष्म प्राकृतिक निरीक्षण का भी परिचय दिया है। परन्तु कुमारसम्भव में उनका प्रकृति के प्रति अनुराग खूब प्रकट हुआ है। वस्तुतः इस महाकाव्य में इसके लिये अवसर था भी। हिमालय और उसके वन, गंगा की धारा और उसके रेत भरे किनारे, अनेक सरोवर और प्रपातों ने कालिदास के प्रकृति वर्णन में स्थान पाया है। कुमारसम्भव का आरम्भ ही हिमालय वर्णन से होता है और यह वर्णन विस्तार से किया गया है। इस प्रारम्भिक वर्णन में कहीं-कहीं तो उनका अच्छा प्रकृति निरीक्षण दृष्टिगोचर होता है और कहीं-कहीं ऐसा भी प्रतीत होता है कि उन्होंने कुछ अपनी कल्पना का सहारा लिया है। इस कल्पना के कारण इस वर्णन में कुछ ऐसी विचित्र बातें आ गई हैं जो सुन्दर होने पर भी शायद पाठक को हिमालय पहुँचने पर दिखाई न पड़ें। परन्तु काव्य में कल्पना का इतना स्थान उचित रूप से स्वीकार किया ही जाना चाहिये। इसके उपरान्त तीसरे सर्ग में वसन्त का वर्णन किया गया है। यह वर्णन सचमुच ही बहुत सुन्दर बन पड़ा है। इतने संक्षेप में इतना सुन्दर और भावपूर्ण वर्णन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। पांचवें सर्ग में भी उन प्राकृतिक परिस्थितियों का वर्णन है, जिनमें रह कर पार्वती तप कर रही थी। यहां पर जलती हुई आग, काली बिजलियों से भरी बरसाती रातें, सर्दियों में कमलों से शून्य सरोवर, इत्यादि का वर्णन किया गया है। इसके बाद आठवें सर्ग में महादेव ने पार्वती के साथ जो वनों और पर्वतों पर विहार किया, उसके प्रसंग में प्रकृति के बहुत ही मनोहारी वर्णन किये गये हैं। इन वर्णनों में कवि ने अपने निरीक्षण तथा प्रतिभा के चमत्कार को एक साथ मिलाकर प्रदर्शित किया है। यहां उषाकाल, रंगीन संध्याओं, चांदनी रातों, नाचते हुए मोरों, सांझ के समय मुंदते हुए कमलों और उनमें गुनगुनाते हुए भौरों, चकवा-चकवियों, निर्झरों इत्यादि के बहुत ही आकर्षक वर्णन किये गये हैं।

परन्तु कालिदास का प्रकृति प्रम और प्रकृति निरीक्षण केवल इस प्रकार के वर्णनों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वह तो उनके काव्य के सर्वाङ्ग में रमा हुआ है। प्रकृति के फूल उनकी नायिकाओं के अंगों से तुलना के ही काम नहीं आते, बल्कि समय-समय पर वे उन नायि-काओं के शृङ्गार साधन बनकर उनके सौन्दर्य को भी बढ़ाते हैं। कालि-दास की नायिकायें प्रायः अपना शृङ्गार फूलों और पत्तों से ही करती हैं। कुमारसम्भव की पार्वती और अभिज्ञान शाकुन्तल की शकुन्तला पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है। अभिज्ञान शाकुन्तल में कालिदास ने प्रकृति का जैसा मनुष्य से सहानुभूति रखने वाला उसके सुख-दुःख में भाग बँटाने वाला स्वरूप चित्रित किया है, वैसा कुमारसम्भव में दृष्टि-गोचर नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास का जो प्रकृति प्रेम और निरीक्षण शाकुन्तल में अपनी चरम सीमा पर पहुँचा, कुमार-सम्भव में यह केवल विकास की ही दशा में था।

कालिदास पर प्रकृति के सौन्दर्य का मर्मस्पर्शी प्रभाव क्रमशः अधिक और अधिक होता गया था, यह बात उनकी रचनाओं को पढ़ने से स्पष्ट हो जाती है। ऋतुसंहार में भी कालिदास ने प्रकृति का वर्णन किया है, किन्तु वहाँ प्रकृति उनकी नायिकाओं के सम्मुख गौण हो गई है। किस ऋतु में तरुण और तरुणियों के मन में प्रेम की तरंगें किस रूप में उठती हैं, यही बात ऋतुसंहार में विस्तार से वर्णित की गई है। सुन्दरियों का सौन्दर्य, उनके विलास और हाव-भाव प्राकृतिक सौन्दर्य पर हावी हो गये हैं। कुमारसम्भव इस दृष्टि से एक पग आगे की रचना है, क्योंकि इसमें प्रकृति सौन्दर्य की पूर्ति दैवीय सौन्दर्य द्वारा करने का यत्न किया है। प्रकृति सौन्दर्य के प्रतीक हिमालय की सुरम्यता को महादेव और पार्वती के तप द्वारा और भी अधिक निखारने का प्रयत्न किया गया है। मेघदूत मनुष्य और प्रकृति में एकात्म्य स्थापित करने का

प्रयत्न है। एक ओर तो विरही यक्ष प्रकृति के सौन्दर्य को देख-देख कर तरह-तरह से प्रभावित होता है और साथ ही वह प्रकृति से उसी प्रकार प्रभावित होने वाली अपनी प्रिया के साथ बिताये हुए अतीत की स्मृति और आने वाले सुखद मिलन की कल्पना से विभोर हो उठता है। रघुवंश में कालिदास ने यह प्रकट करने का यत्न किया है कि मानव-जीवन तभी तक सुखी और समृद्ध रहता है, जब तक वह प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क में रहता है। प्रकृति से संसर्ग से दूर हो जाने पर उसका आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक पतन अवश्यम्भावी है। परन्तु अभिज्ञान शाकुन्तल में पहुँच कर कालिदास की प्रकृति के मार्मिक स्वरूप का उद्घाटन करने वाली प्रतिभा अपने सर्वोच्च स्तर पर जा पहुँची है। यहां मानव और प्रकृति में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ है कि दोनों अभिन्न हो उठे हैं। मानवीय भावनाओं के उतार-चढ़ाव प्रकृति के रूपों के साथ और प्रकृति के स्वरूप मानव भावनाओं के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। वासना का प्रथम उद्रेक समाप्त होने पर पाठक एक उच्चतर स्तर पर पहुँच जाते हैं, जहां प्राकृतिक सौन्दर्य भी अधिक है और आध्यात्मिक सौन्दर्य भी। यह स्थान है महर्षि कश्यप का आश्रम, जहां दुष्यन्त और शकुन्तला का पुनर्मिलन होता है। जिस प्रकार यहां प्राकृतिक सौन्दर्य अलौकिक है, उसी प्रकार यहां मानव भावनाएं भी अपने सर्वोतम रूप में प्रकट होती हैं। प्रकृति और मानव का यह संयोग विलक्षण ही है।

रीति-रिवाजों का ज्ञान :

संस्कृत के कवियों के लिये कविता करना उतना सरल कार्य नहीं था, जितना हिन्दी के कवियों के लिये माना जाता रहा है। संस्कृत के कवियों के लिये बहुश्रुत और बहुज्ञ होना आवश्यक था। उन्हें न केवल साहित्य शास्त्र का समुचित ज्ञान होना आवश्यक था, बल्कि भूगोल, तथा

देश के रीति-रिवाजों और अन्य सभी प्रचलित शास्त्रों का यथेष्ठ ज्ञान होना आवश्यक समझा जाता था। इसीलिये जहां एक ओर हमें बीच-बीच में कालिदास में आयुर्वेद और ज्योतिष शास्त्र के संकेत मिलते हैं, वहां दूसरी ओर उनका लौकिक रीति-रिवाजों का ज्ञान भी विशद दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिये कुमारसम्भव के सातवें सर्ग में जहां महादेव और पार्वती के विवाह का वर्णन किया गया है, कालिदास ने अपने समय में प्रचलित विवाह-अवसर पर होने वाले लौकिक आचारों का विस्तृत वर्णन कर दिया है। बीच-बीच में भी वे इस बात का उल्लेख करते रहे हैं कि विधि-विधानों की ओर उनका पुरा ध्यान रहता था। महाकाव्य में सब विधि-विधानों के विस्तृत वर्णनों का अवकाश नहीं होता, इसीलिये अनेक स्थानों पर कालिदास 'यथाविधि' अथवा 'विधिज्ञ' आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा यह संकेत कर गये हैं कि विधि का उन्हें ज्ञान तो है, परन्तु इस प्रसंग में उसका पूरा वर्णन करना अभीष्ट नहीं है।

समुचित लोकाचारों के ज्ञान का ही यह परिणाम है कि उनके महाकाव्य में विषम परिस्थितियों में भी सर्वत्र औचित्य का पूर्ण पालन हुआ है। अब आज की परिस्थितियों की दृष्टि से देखा जाय तो एकान्त में तपस्या करते हुए महादेव की सेवा के लिये कुमारी पार्वती का जाना अथवा वन में तप करती हुई पार्वती से ब्रह्मचारी की विवाह के सम्बन्ध में बातचीत बहुत विचित्र प्रतीत होगी। परन्तु कालिदास के महाकाव्य को पढ़ते हुए इन विषम स्थलों में भी कहीं पर जरा भी अनौचित्य नहीं आने पाया है। प्रत्येक बात उचित गौरव के साथ ही हुई है। सारे वार्तालाप उन उन पात्रों की प्रवृत्ति और रुचि के अनुकूल हैं। कहीं पर भी छिछोरापन या उथलापन दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण सुनिश्चित रूप से यही समझा जा सकता है कि कालिदास अपने समय के कुलीन और सम्भ्रान्त समाज में रहे थे और वह समाज आजकल के समाज की अपेक्षा

किसी भी दृष्टि से कम सुसंस्कृत नहीं था। यदि वह कम सुसंस्कृत होता तो अवश्य ही अनेक बातें हमें आज खराब और अनुचित प्रतीत होतीं। परन्तु वास्तविक स्थिति इसके विपरीत है। इस काव्य में वर्णित प्रसंग आज के समाज की तुलना में अधिक सुसंस्कृत प्रतीत होते हैं।

दिव्य-पात्रों में मानवोचित भाव :

कुमारसम्भव में आये हुए पात्र मानव नहीं हैं। वे देवता, पर्वत, दैत्य अथवा यक्ष, गंधर्व इत्यादि हैं। पर्वतराज हिमालय देवताओं में से ही एक माना गया है जो अन्य देवताओं की भाँति यज्ञ के अंश का अधिकारी है। महादेव, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि देवता हैं हीं। दैत्यराज तारक असुर है। फिर भी ये सब पात्र मानवोचित भावों से पूर्ण हैं। ये मनुष्यों की भांति ही प्रेम करते हैं, विरह में व्याकुल होते हैं, डरते हैं और परोपकार करने को तैयार रहते हैं। इस दृष्टि से कालिदास ने अपने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक निरक्षण का परिचय दिया है। उदाहरण के लिये हिमालय की पत्नी मेना अपनी कन्या उमा को तप करने से रोकती है। क्योंकि वह अपनी प्यारी बेटी को तप का कष्ट सहने नहीं देना चाहती। परन्तु बेटी मानती नहीं और वह अपने पिता को मनाकर उससे तप की आज्ञा प्राप्त कर लेती है। यह बात, लगता है चिरकाल से इसी प्रकार होती आई है कि बालक अपने हठ इसी प्रकार पूरे करवाते रहे हैं।

कालिदास के इस काव्य में हमें तत्कालीन भारतीय पारिवारिक जीवन की भी झलक दिखाई पड़ती है और यह पारिवारिक जीवन आज भी बहुत कुछ अंशों में ज्यों का त्यों बना हुआ है।

इसी प्रकार तारक द्वारा देवताओं की पराजय और उस पराजय से

चिन्तित होकर देवताओं का विजय प्राप्ति के लिये प्रयत्न बिल्कुल मानवोचित भावपूर्ण हैं। दूसरी ओर जब देवता अपने कष्ट के निवारण के लिये ब्रह्मा के पास जाते हैं तो ब्रह्मा बड़े असमंजस में पड़ जाते हैं, क्योंकि उन्होंने ही तो तारक को यह वर दिया था कि 'तुम्हें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मार पायेगा, जिसकी आयु सात दिन से अधिक हो।' अब जिसे स्वयं शक्ति प्रदान की, उसे स्वयं ही नष्ट करने का उनका मन नहीं होता। इसलिये उन्होंने स्वयं कोई उपाय न करके उन्हें एक और मार्ग दिखा दिया, जिससे उनका कष्ट दूर हो सके। इससे ब्रह्मा का एक गौरवपूर्ण मानवोचित रूप हमारे सम्मुख उपस्थित होता है।

अपना कार्य सिद्ध करने के लिये इन्द्र द्वारा कामदेव का विशेष आदर भी इन्द्र की व्यवहार-कुशलता का परिचायक है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर यह बात स्पष्ट है कि भले ही कालिदास ने अपने महाकाव्य के पात्र देवता और असुर रखे हैं, फिर भी इसमें मानवोचित भावों तथा मनोवैज्ञानिक निरीक्षण की कमी नहीं है।

महादेव और पार्वती का शृंगार वर्णन :—

सनातनी हिन्दू महादेव और पार्वती को सबसे बड़े देव और देवी मानते हैं। स्वयं कालिदास शिव के परम भक्त थे। अपने सभी काव्यों में उन्होंने प्रारम्भ में शिव की स्तुति की है और यथावसर अन्य स्थानों पर भी अपनी शिव भक्ति प्रकट की है। फिर भी उन्होंने महादेव और पार्वती का, जिन्हें वे जगत् के माता-पिता मानते थे, शृंगार वर्णन किया। इसको कुछ लोगों ने शायद बुरा भी माना और किंवदन्ती है कि कुमारसम्भव लिखने के उपरान्त कालिदास को कोढ़ हो गया था और फिर उन्होंने प्रायश्चित स्वरूप रघुवंश लिखा, जिससे उनका कोढ़ दूर हुआ। यहां कोढ़ का अभिप्राय सम्भवतः इतना ही हो कि समाज के कुछ

वर्ग में कालिदास की प्रतिष्ठा कम हो गई हो या इस प्रकार की रचनाएं लिखने वालों के प्रति जैसा अवज्ञा का भाव संसार के सभी देशों और कालों में कुछ वर्गों में उत्पन्न होता रहा है, कालिदास के प्रति भी हो गया हो और रघुवंश लिखने के बाद उनकी प्रतिष्ठा फिर यथापूर्व हो गई हो। यह बात असम्भव नहीं। खास तौर से तब जब कि समाज में एक बड़ा वर्ग ऐसा होता है, जो कुमारसम्भव जैसी रचनाओं को आग्रहपूर्वक पढ़ता है; पढ़कर उनमें आनन्द लेता है और उसके बाद उत्साह के साथ उन रचनाओं की निन्दा करता है; कवि को गालियां देता है; और फिर छिपकर उन्हीं रचनाओं को पढ़ता है और आनन्द लेता है।

इस प्रकार की निन्दा से न तो कुमारसम्भव का प्रचार ही रुका और न इससे कालिदास के उस पद को ही कुछ आंच पहुंची, जो उन्होंने कवियों में बना लिया है। फिर भी धर्म-धुरन्धरों का कालिदास के प्रति यह क्रोध इसलिये अन्यायपूर्ण था, क्योंकि उन्होंने कुमारसम्भव के अन्दर वह रही आदर्श की धारा की ओर आंखें खोल कर देखने का यत्न ही नहीं किया। कुमारसम्भव में कालिदास ने उस काम का दहन प्रदर्शित किया है, जो केवल रूप सौन्दर्य से उद्दीप्त हो उठता है। ऐसे प्रेम को उन्होंने त्याज्य माना है, जो केवल काम वासना के वशीभूत होकर किया जा रहा हो। इसीलिये तीसरे अंक में पार्वती को लांछित और तिरस्कृत होना पड़ा है। केवल रूप-सौन्दर्य के बल पर महादेव को प्राप्त न करके पार्वती उन्हें पाने के लिये तपस्या करती हैं और इस तपस्या के बाद जो मिलन होता है, वह कालिदास की दृष्टि में मंगलमय है। जीवन में शृंगार, काम-सुख तथा संतान प्रजनन का अनिवार्य और महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिये ऐसे प्रसंगों का उल्लेख होते ही 'अश्लील है, अश्लील है' चिल्लाने लगना, अपनी पाखण्डवृत्ति का परिचय देना है। विशेष रूप से

तब, जबकि ऐसा शोर मचाने वाले लोग अपने वैयक्तिक जीवन में एक-दम धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और जीवनमुक्त न हों। परन्तु ऐसे लोग समाज में सदा रहे हैं और इस बात की भी कोई सम्भावना नहीं है कि कोई ऐसा समय आयेगा जब समाज में ऐसे पाखंडियों का एकदम अभाव हो जाय।

कालिदास का धार्मिक सम्प्रदाय :

ऊपर लिखा जा चुका है कि कालिदास शैव मत के अनुयायी थे। परन्तु उस काल में जिसमें धर्म का और साम्प्रदायिक मतभेदों का आज की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व था, रहते हुए भी कालिदास अपनी कवि-सुलभ हार्दिक विशालता के कारण सब प्रकार की कट्टरता से परे थे। शैवों और वैष्णवों में किसी समय शिव और विष्णु को एक-दूसरे से बड़ा सिद्ध करने के लिए काफी संघर्ष होता रहा है। परन्तु कालिदास की रचनाओं में इस प्रकार की कटुता का अंश नहीं है। कुमारसम्भव के सातवें सर्ग में एक श्लोक में उन्होंने इस विषय में अपना विचार बहुत ही स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि 'एक ही मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन रूपों में बँट गई है और समय-समय पर ये तीनों ही रूप एक-दूसरे से बड़े-छोटे होते रहते हैं। कभी महादेव विष्णु से बढ़ जाते हैं और कभी विष्णु महादेव से। कभी ब्रह्मा इन दोनों से बड़े हो जाते हैं और कभी ये दोनों ब्रह्मा से बड़े हो जाते हैं।

> एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
> विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ॥

यह उदारता कालिदास के अनुकूल ही है।

आठवें सर्ग से आगे का कुमारसम्भव :

आठवें सर्ग से आगे का कुमारसम्भव कालिदास रचित नहीं माना जाता। पहले आठ सर्ग ही कालिदास रचित कहे जाते हैं। इस विषय में बड़ा प्रमाण कहा जाता है कि कालिदास के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने कुमारसम्भव के पहले आठ सर्गों पर ही टीका की है, आगे के सर्गों पर नहीं। इसके अतिरिक्त बाद के अन्य कवियों की रचनाओं में कुमारसम्भव के जो भी उद्धरण पाये गये हैं, उनमें से एक भी आठवें सर्ग के बाद वाले सर्गों में से नहीं हैं। सबके सब निरपवाद रूप से आठवें सर्ग से पहले के ही हैं। आठवें सर्ग के बाद सभी सर्गों में श्लोकों की संख्या बहुत कम हो गई है। नौवें से सत्रहवें सर्ग की रचना पहले के आठ सर्गों की भांति परिष्कृत नहीं है और यतिभंग इत्यादि दोष भी पाये जाते हैं। व्याकरण की भूलें भी अनेक हैं और छन्द की पूर्ति के लिये हि, स, खलु, ननु इत्यादि शब्दों का प्रयोग बहुत मिलता है। रचना में काव्य का सौन्दर्य बहुत कम है। परन्तु जिसने भी इन सर्गों को लिखा है, उसने पहले कालिदास की अन्य रचनाओं को अच्छी प्रकार पढ़ लिया है और यह यत्न किया है कि रचना कालिदास से मिलती-जुलती जान पड़े। इसीलिये आगे के सर्गों में भी कहीं-कहीं ऐसी कुछ उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएं आ जाती हैं, जो कालिदास की सी प्रतीत होती हैं।

सामान्यतया आठवें सर्ग से आगे का कुमारसम्भव कालिदास रचित नहीं माना जाता।

अनुवाद की कठिनाइयाँ :

इस बात को हमसे अधिक कोई भी अधिक नहीं जानता कि कालि-

दास की किसी भी रचना का हिन्दी में सफल अनुवाद कर पाना असम्भव ही है। कारण कि उत्तम काव्य में शब्द और अर्थ इस प्रकार इकट्ठे मिले रहते हैं कि उन दोनों को अलग-अलग कर पाना सरल नहीं होता। हिन्दी ही क्या किसी भी अन्य भाषा में कालिदास की रचना का रूपान्तर करते हुए वह शब्द-सौन्दर्य एकदम जाता रहेगा, जिस पर कवि ने पर्याप्त यत्न किया है। इसके साथ ही छन्दों की यह मधुर झंकार जिसके चुनाव में कवि ने इतना ध्यान रखा है, अनुवाद में कठिनाई से ही आ पायेगी। फिर इस गद्य अनुवाद में कालिदास के मूल काव्य का सौन्दर्य आ सकता है, ऐसा भ्रम हमें कभी नहीं हुआ।

फिर भी जब तक और कोई प्रतिभाशाली कवि समुचित रीति से कुमारसम्भव का छन्दोबद्ध, ललित, मधुर अनुवाद प्रस्तुत न करे तब तक पाठकों को कालिदास की रचना का जितना भी हो सके उतना आनन्द प्रदान करने के लिये यह पद्य का गद्य में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इसके द्वारा यदि कालिदास के काव्य में निहित अर्थ सौन्दर्य ही थोड़ा बहुत पाठकों के सम्मुख आ सके तो हम अपने उद्देश्य को पूर्ण हुआ मानेंगे।

कठिनाई केवल इतनी ही नहीं कि अनुवाद पद्य का गद्य में है और छन्दों का अवसरानुकूल प्रवाह इसमें नहीं है, बल्कि साथ ही यह भी कठिनाई है कि जहां कालिदास ने मूल संस्कृत में एक ही अर्थ के लिये हर जगह नये शब्द का प्रयोग किया है, वहां हिन्दी अनुवाद में उन अलग-अलग शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सका, क्योंकि हिन्दी पाठक के लिये वे शब्द अपरिचित हो जाते। उदाहरण के लिये मूल काव्य में महादेव, पार्वती और कामदेव के लिये हर जगह नये-नये अलग-अलग नाम प्रयुक्त किये गये हैं। महादेव के लिये त्र्यम्बक, त्रिलोचन, चन्द्रमौलि,

हर, स्मरशासन, इन्दुमौलि इत्यादि नामों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार कामदेव के लिये स्मर, मन्मथ, रतिनायक, संकल्पयोनि, इत्यादि अनेक नाम प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु हिन्दी अनुवाद में हमने केवल दो-एक शब्दों के हेर-फेर में ही काम चलाने का यत्न किया है, जिससे सामान्य पाठक नामों के भ्रम में न पड़ जाएं। अवश्य ही इससे काव्य-सौंदर्य पर आघात पहुँचा है। परन्तु जब तक पाठक ऊपर न उठें, तब तक विवश होकर अनुवादक को कवि को ही नीचे झुकाना होगा। यह बहुत प्रिय कार्य नहीं है।

इस पर भी यह यत्न किया गया है जहाँ तक सम्भव हो, अनुवाद में मूल काव्य के शब्दों का ही प्रयोग किया जाय। संस्कृत के समासयुक्त पदों का अनुवाद करते हुए दो कठिनाइयों के बीच में से मार्ग ढूंढ़ने का यत्न किया गया है। एक तो यह कि मूल का अर्थ स्पष्ट हो जाय और दूसरे यह कि समास को तोड़ते हुए जो है सो वाली शैली से बचा जाय और यथाशक्ति भाषा को प्रवाहपूर्ण रखा जाय। इन दोनों उद्देश्यों में सफलता मिली है, यह दावा कर पाना हमारे लिये सम्भव नहीं है। संस्कृत में छोटे से समास में इतना अर्थ भर दिया जाता है कि उसे प्रवाहपूर्ण हिन्दी में प्रस्तुत करने में कई बार काफी उलझन खड़ी हो जाती है। इसीलिए अपने सामर्थ्य की अल्पता तथा कार्य की कठिनाई को देखते हुए यह अनुवाद जैसा भी बन पड़ा है, हम उसी में संतोष अनुभव करते हैं।

साहित्य मन्दिर,
४/१६, रूपनगर
दिल्ली।

—विराज

प्रथम सर्ग

उत्तर की ओर हिमालय नाम का दिव्य पर्वतराज है, जिसके छोर पूर्व और पश्चिम समुद्रों के अन्दर तक गये हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यह हिमालय सारी पृथ्वी का मान-दण्ड बना-हुआ हो।

सब पर्वतों ने महाराज पृथु के उपदेश से इस हिमालय को गोवत्स बनाकर पृथ्वी से देदीप्यमान रत्नों तथा महोष-धियों का दोहन किया था। उस समय दोहन में प्रवीण मेरु पृथ्वी को दुहने बैठा था।

अनन्त रत्नों की खान, इस हिमालय के सौन्दर्य को विपुल हिमराशि भी नष्ट न कर सकी। गुणों के समूह में अकेला दोष चन्द्रमा की किरणों में कलंक की भाँति छिप ही जाता है।

इस हिमालय के शिखर अप्सराओं के विलास की प्रसाधन बनने वाली सिन्दूर, गैरिक आदि धातुओं से रंगे रहते हैं, जिन्हें देखकर मेघ-खंडों को नाना रंगों में रंग देने वाली असमय में आ गई सन्ध्या का भ्रम होने लगता है।

इस पर्वतराज के कटि भाग में विचरण करने वाले मेघों की शिखरों के मध्य पर पड़ने वाली शीतल छाया का आनन्द लेने के उपरान्त वर्षा से उद्विग्न होकर सिद्ध लोग इस पर्वत

के उन ऊँचे-ऊँचे शिखरों पर जा चढ़ते जहाँ धूप निकली रहती है।

हाथियों को मारकर घूमने वाले सिंहों के पद-चिन्हों पर लगा हुआ रक्त यद्यपि बर्फ के पिघलने से बहकर धुल जाता है, फिर भी उनके नखों में फँसे हुए गजमुक्ता जहाँ-तहाँ गिरते जाते हैं। इन मोतियों को देख-देखकर ही यहाँ के किरात उन सिंहों के जाने के मार्ग को पहचान लेते हैं।

यहाँ विद्याधर सुन्दरियाँ गजबिन्दु के समान लाल भोज-तरु की छालों पर धातुओं के रस, गेरू, सिन्दूर आदि से अक्षर बनाकर प्रेम-पत्र लिखा करती हैं।

यहाँ हिमालय की गुफाओं के मुख से निकलता हुआ समीर बांसों के छेदों को भर कर, जिससे अनगिनत बांसुरियों के बजने की-सी ध्वनि निकलने लगती है, ऊँचे राग में गाते हुए किन्नरों को तान देने का-सा प्रयत्न करता है।

यहाँ हाथियों द्वारा अपने कपोलतल की खुजली मिटाने के लिए रगड़े गये देवदारु वृक्षों का, दूध निकल आने के कारण फैलता हुआ सौरभ, पर्वत-शिखरों को सुगन्धित किये रखता है।

यहाँ रात में चमकने वाली वनस्पतियों का प्रकाश गुहाओं के रूप में बने हुए घरों के अन्दर पड़ता है, और वह रमणियों के साथ विलास करते हुए वनचरों के लिये तैल रहित प्रदीप का काम देता है।

यहाँ पत्थर की तरह कठोर हुए हिम युक्त मार्ग पर चलते

समय यद्यपि पैरों की अंगुलियों और एड़ियों को बहुत कष्ट होता है, फिर भी भारी नितम्बों तथा स्तनों के बोझ के कारण किन्नर-तरुणियाँ मन्दगति का परित्याग नहीं कर पाती।

अपनी गुहाओं में आश्रय देकर यह हिमालय दिन में डरे हुए अन्धकार की दिवाकर से रक्षा करता है। महान लोगों में अपनी शरण में आये हुए क्षुद्र व्यक्तियों के प्रति भी सज्जन की भाँति ही कृपाभाव होता है।

जहाँ-तहाँ चँवर गायें, हिलने से शोभा बिखराने वाले तथा चन्द्रमा की किरणों के समान धवल अपनी पूँछों के चंवर डुला-डुलाकर इस हिमालय के गिरिराज नाम को सार्थक करती है।

यहाँ रमण के प्रारम्भ में अपने प्रेमियों द्वारा शरीर के वस्त्र हटा दिये जाने से अत्यन्त लज्जाकुल हुई किन्नर-सुन्दरियों के लिये संयोगवश ही गुफाओं के द्वार पर आकर लटक जाने वाले बादल पर्दे का स्थान ले लेते हैं।

इस हिमालय का पवन भागीरथी के प्रपातों से जलकणों को लेकर बहता है, जिससे देवदारु के वृक्ष रह-रह कर कांप उठते हैं और मोरों के पंख बिखर जाते हैं। इस पवन का आनन्द पशुओं के शिकार के लिये निकले हुए किरात लोग लेते हैं।

सप्तर्षियों के हाथों द्वारा चुने जाने से बचे हुए इस हिमालय के ऊँचे सरोवरों के कमलों को नीचे से उगता हुआ सूर्य अपनी ऊपर की ओर उठती हुई किरणों से विकसित करता है।

यह हिमालय यज्ञों के लिये उपयोगी सामग्री का उत्पत्ति-स्थान है, तथा इसमें समस्त पृथ्वी को धारण कर सकने की शक्ति है। इन दो बातों को भली भाति देखकर ही प्रजापति ने स्वयं इसे पर्वतों का अधिपति बनाया है और अन्य देवताओं की भाँति यज्ञभाग प्रदान किया है।

मेरु के मित्र इस हिमालय ने अपने वंश की वृद्धि के लिये अपने उपयुक्त, मुनियों की भी आदरणीय, पितरों की मनः संकल्प से उत्पन्न हुई मेना नामक कन्या से विधिपूर्वक विवाह किया।

इसके पश्चात् कुछ समय बीतने पर उन दोनों के अपने अनुरूप ही सम्भोग में प्रवृत्त होने पर मनोहारी यौवन से भरी हुई पर्वतराज की पत्नी ने गर्भ धारण किया।

उसने नाग तरुणियो द्वारा उपभोग किये जाने योग्य मैनाक को जन्म दिया; जिसने समुद्र से मित्रता स्थापित की थी और पर्वतों के पक्ष काटने वाले इन्द्र के क्रुद्ध होने पर भी जिसे वज्र के आघातों की वेदना का ज्ञान ही नही हुआ।

दक्ष की कन्या और महादेव की पूर्वपत्नी सती, जिसने पिता से अपमानित होने पर योगबल से प्राण त्याग दिये थे, फिर जन्म लेने के लिये पर्वतराज हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ में आ प्रविष्ट हुई।

उसके जन्म के दिन आकाश निर्मल था, दिशाएँ स्वच्छ थी। शंखध्वनि के अनन्तर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और सब चराचरों के मन अकारण आनन्द से भर उठे।

कन्या प्रभामंडल से देदीप्यमान थी; रोम-रोम से किरणें फूट रही थीं; लगता था कि मानो मेघ-गर्जन के उपरान्त विदूर पर्वत की भूमि में रत्नांकुर फूट रहे हों। उस कन्या को देखकर मां फूली न समाती थी।

द्वितीया की शशिकला के समान दिनोदिन वह बढ़ने लगी और बढते हुए चन्द्रमा की चाँदनी के समान उसका रूप भी निखरने लगा।

स्नेही बन्धु उसे 'पार्वती' नाम से पुकारते थे। पर बाद में माता द्वारा तप का निषेध किये जाने से 'उमा' पड़ गया।

हिमालय के पुत्र भी थे; पर उमा को देखते-देखते उसका कभी भी जी नही भरता था। वसन्त के अनन्त पुष्पों में भ्रमरमाला का आम्रमंजरी से ही विशेष अनुराग होता है।

जैसे उज्ज्वल शिखा से दीप, गंगा से स्वर्ग मार्ग, और विशुद्ध वाणी से विद्वान; इसी प्रकार हिमालय उस कन्या से सुशोभित भी हुआ और पवित्र भी।

गंगा की बालू में घरौंदों से, गेंदों से और गुड़ियों से सखियों के साथ खेलती हुई वह बाल्यावस्था में प्रविष्ट हुई।

जैसे शरद् ऋतु में हंस-मालाएँ स्वयं गंगा में आ जाती है; और महोषधियों में रात्रि में स्वयं चमक आजाती है; शिक्षा काल में उसी प्रकार उसे पूर्वजन्म की सब विद्याएँ स्वयं उपस्थित हो गई।

इसके बाद उसने नवयौवन में प्रवेश किया। यह यौवन धारण न किया जाने वाला आभूषण है; आसव न होने पर

भी मादक है; पुष्पों से न बना होने पर भी कामदेव का बाण है।

तूलिका से चित्र के समान और रवि किरणों से कमल के समान, नवयौवन से उसका सुडौल शरीर उभर कर निखर उठा।

वह भूमि पर चरण रखती थी, तो उन्नत अंगूठों के नखों की बिखरी हुई लालिमा से जान पड़ता था, जैसे स्थल में कमल खिले हुए हों।

यौवन के भार से अवनत पार्वती की गति ऐसी मनोहर थी, मानो चरणनूपुर का वादन सीखने के बदले में राजहंसों ने पहिले ही उसे अपनी विलासयुक्त गतियाँ सिखा दी हों।

उसकी छोटी-छोटी और गोल पिंडलियों के बनाने में सारी सौन्दर्य सामग्री समाप्त हो गई, इससे शेष देह का निर्माण करने के लिये फिर से सामग्री जुटाने में विधाता को बहुत प्रयास करना पड़ा।

विशालता के लिये प्रख्यात होते हुए भी गजराजों के शुंडा-दंड स्पर्श में खुरदरे होने से और कदलीस्तम्भ अत्यन्त शीतल होने से उसकी जांघों की तुलना में नहीं टिकते थे।

उस अनिंद्यसुन्दरी के नितम्बों की सुन्दरता का अनुमान इसी से लग सकता है कि बाद में महादेव ने उसे अपने अंक में स्थान दिया, जिसकी कोई अन्य नारी कामना भी नहीं कर सकती।

नवयौवन में उगे हुए नये रोमों की नाभि तक पहुँचने

वाली रेखा ऐसी दीख पड़ती थी, मानो नीवी को पार करके मेखला के बीच की नीलमणि चमक रही हो ।]

उसकी कटि अत्यन्त पतली थी और पेट पर त्रिवली सुशोभित थी। प्रतीत होता था कि नवयौवन ने कामदेव के चढ़ने के लिये सीढ़ी बना दी है।

उस कमलनयनी के गौर स्तन बढ़कर परस्पर इतने सट गये थे कि श्यामल स्तनाग्रों के बीच में एक कमलनाल रखने तक का स्थान न था।

उसकी कोमल बाहें शिरीष पुष्प से भी अधिक सुकुमार थीं, तभी तो कामदेव पराजित होकर भी उन्हें महादेव के गले का हार बना सका था।

स्तनयुगल की समीपता से मनोहर दीख पड़ने वाला उसका कण्ठ सच्चे मोतियों के हार की शोभा था और हार उसके कण्ठ की।

पहले लक्ष्मी जब चन्द्रमा में जाती थी तो उसे कमल का आनन्द नहीं मिलता था और कमल में जाने पर चन्द्रमा का सुख नहीं मिलता था। परन्तु उमा के मुख में आने पर चंचल लक्ष्मी को दोनों का सुख एक साथ प्राप्त हुआ।

यदि नवपल्लवों में श्वेत सुमन सजा दिया जाय या लाल मूंगे पर उज्ज्वल मोती रख दिये जायें, तो अरुण अधरों पर कान्ति बरसाने वाले उसके मन्दस्मित की तुलना हो सकती है।

मधुरभाषिणी पार्वती के बोलने पर स्वर से मानो अमृत झरता था और तुलना में कोयल की कूक तक कर्कश और

बेसुरी वीणा के समान जान पड़ती थी।

वायु विकम्पित नील कमलों के समान बड़े-बड़े नेत्र वाली पार्वती की अधीर चितवन को देखकर सन्देह होता था कि यह उसने हरिणियों से सीखी है या हरिणियों ने उससे ?

अंजन से बनाई हुई-सी उसकी लम्बी और काली भौंहों की कान्ति को देखकर कामदेव का अपने धनुष-सौन्दर्य का गर्व चूर-चूर हो गया।

यदि पशुओं के मन में भी लज्जा होती हो तो जिन्हें देख कर चंवर गायें भी अपने बालों का मोह छोड़ दें, ऐसे सुन्दर उसके केश थे।

विधाता ने सब सुन्दर पदार्थों को यथाविधि एकत्र सजा-कर विश्व के सम्पूर्ण सौन्दर्य को एक साथ देखने की इच्छा से उसका निर्माण किया था।

देवताओं ने निश्चय किया कि पर्वतराज की पुत्री गौरी का ही विवाह महादेव से करवाया जाय; क्योंकि सम्पूर्ण त्रिलोकी में और कोई नारी शिव की पत्नी बनने में समर्थ नहीं है।

एक बार स्वेच्छाविहारी नारद ने उस कन्या को पिता हिमालय के पास देखा और वह बोले कि किसी दिन यह अपने प्रेम के द्वारा शिव की एकमात्र अर्धांगिनी बनेगी।

इसलिये पार्वती की आयु बढ़ती जाने पर भी हिमालय ने उसके लिये किसी वर की खोज नहीं की। मन्त्रों द्वारा

पवित्र की हुई आहुति को अग्नि के अतिरिक्त अन्य कोई कैसे ग्रहण कर सकता है ?

जब तक महादेव स्वयं ही न मांगें, तब तक हिमालय के लिये उन्हे अपनी कन्या का दान करना सम्भव नही था। स्वाभिमानी व्यक्ति प्रार्थना अस्वीकृत हो जाने के भय से अभीष्ट बात में भी उदासीन होकर चुप ही बैठ रहते है।)

जब पिछले जन्म मे दक्ष के ऊपर क्रुद्ध होकर उस सुदशना सती ने देह त्याग कर दिया था, तब से ही पशुपति आसक्ति-विहीन होकर अपत्नीक रह रहे थे।

वह आत्मवशी महादेव तपस्या के लिये हिमालय के कस्तूरी की गन्ध से सुवासित एक शिखर पर चले गये। वहाँ गगा की जलधारा देवदारु तरुओं को सींचती हुई बहती थी और किन्नरगण जब तब गीत गाया करते थे।

वहाँ शिव के गण नमेरु पुष्पों की मालाएँ सिर पर लपेटे, कोमल स्पर्श वाली भोज वृक्ष की छालों को पहनकर मनसिल से अपने शरीर को रंगे, शिलाजीत वाली पत्थर की शिलाओं पर बैठे रहते थे।

दर्प के कारण मधुरध्वनि वाला शिव का वाहन नन्दी सिहो की गर्जना को न सहकर अपने खुरो से हिम की शिलाओं को तोड़ता हुआ इतने जोर से गर्ज उठता था कि नील गायें भयभीत होकर उसकी ओर देखने लगती थीं।

वहाँ अष्टमूर्ति शिव अपनी ही एक मूर्ति अग्नि को समिधाओं द्वारा प्रदीप्त करके तपस्या के फल के स्वयं दाता होते

हुए भी न जाने किस कामना से तप करने लगे ।

स्वर्ग के निवासियों के भी पूजनीय, लोकोत्तर शिव की अर्घ्य द्वारा पूजा करके पर्वतराज हिमालय ने अपनी पुनीत कन्या को आदेश दिया कि वह अपनी जया और विजया नामक सखियों के साथ शिव की आराधना करे ।

यद्यपि यह समाधि के लिये विघ्न स्वरूप थी, फिर भी शिव ने उसे सेवा करने की अनुमति दे दी । विकार का कारण उपस्थित होने पर भी जिनके मन में विकार नहीं आता; वे ही वस्तुतः धीर होते हैं ।

वह सुकेशिनी पार्वती पूजा के लिये फूल चुनती थी, कुशलतापूर्वक वेदी की सफाई करती थी और नियम पालन के लिये जल और कुशाएँ लाती थी । इस प्रकार वह प्रतिदिन महादेव की सेवा करने लगी । उसकी परिश्रान्ति को शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की किरणें दूर किया करती थीं ।

दूसरा सर्ग

उसी समय तारकासुर से भयभीत हुए देवता इन्द्र को अग्रणी बनाकर स्वयंभू ब्रह्मा के निकट पहुँचे। उस समय देवताओं के मुख विवर्ण हो गये थे। उनके सम्मुख ब्रह्मा उसी प्रकार प्रकट हुए, जैसे सोये हुए कमल पुष्पों से भरे सरोवरों के ऊपर प्रातःकाल के समय सूर्य उदित होता है।

सम्पूर्ण सृष्टि के बनाने वाले, वाणी के अधिपति ब्रह्मा को सम्मुख देखकर देवताओं ने उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम किया और अर्थगर्भित वाणी में उनकी स्तुति करने लगे :

"हे त्रिमूर्ति, आपको नमस्कार हो। आप सृष्टि से पहले आत्मस्वरूप रहते हैं, परन्तु सृष्टि बना चुकने के बाद तीनों गुणों, सत्व, रजस् और तमस् का विभाग करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में अलग-अलग प्रकट हो जाते हैं।

"आपने ही जल में वह अमोघ बीज बोया था, जिससे समस्त चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई है। इसी से हे अज, आप इस संसार के जनक कहे जाते हैं।

"आप अकेले ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश के तीन रूप धारण करके सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के निमित्त बनते हैं। इससे आपकी महिमा भली-भांति व्यक्त होती है।

"सृष्टि उत्पन्न करने के लिये आपने अपने-आपको ही स्त्री और पुरुष इन दो भागों में विभक्त कर लिया था। उन्ही से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है और वे ही इस समस्त संसार के माता-पिता कहे गये हैं।

"अपने गाप से दिन और रात्रि का विभाग करके आप जो शयन और जागरण करते हैं, समस्त प्राणियों के लिये वही प्रलय और सृष्टि है।

"आप ससार के जनक है, किन्तु आपका जनक कोई नही। आप संसार के सहारक है, किन्तु आपका संहार कोई नही कर सकता। आपने संसार का प्रारम्भ किया, किन्तु आपका प्रारम्भ कभी नही हुआ। आप संसार के स्वामी हैं, किन्तु आपका स्वामी कोई नहीं है।

"आप स्वयं अपना ही ज्ञान प्राप्त करते है और अपने द्वारा स्वय अपना ही सृजन करते है। अपना कार्य पूर्ण कर चुकने के बाद आप स्वय अपने-आप में ही विलीन हो जाते है।

"आप तरल भी है और ठोस भी, आप सूक्ष्म भी हैं और स्थूल भी। आप लघु भी हैं और गुरु भी, आप व्यक्त भी है और साथ ही अव्यक्त भी हैं। आपकी विभूतियाँ यथेच्छ है।

"आप से ही उस वेदवाणी का जन्म हुआ है, जो 'ओ३म्' से प्रारम्भ होती है और जिसका उच्चारण तीन स्वरों मे किया जाता है। जिसका कर्म यज्ञ है और फल स्वर्ग है।

"विद्वान् लोग आपको ही प्रकृति बताते हैं—जो मनुष्य जीवन को गति प्रदान करती है। साथ ही उस प्रकृति का दर्शन करने

वाले और उस प्रकृति के प्रति उदासीन पुरुष भी आप ही कहे जाते हैं।

"आप पितरों के भी पिता हैं, और देवों के भी देव हैं। आप ऊँचों से भी ऊँचे और विधाताओं के भी विधाता हैं।

"आप स्वयं ही हवन करने वाले होता है और हवन में पड़ने वाली हवि आप स्वयं ही हैं। आप ही अनादि, अनन्त उपभोक्ता हैं और उपभोग्य भी स्वयं ही हैं।

"आप स्वयं ज्ञान के लक्ष्य हैं और जानने वाले ज्ञाता भी आप स्वयं हैं। आप स्वयं ध्यान लगाने वाले हैं और आपका ही ध्यान लगाया भी जाता है।"

उन देवताओं के मुख से ऐसी सच्ची और प्रिय लगने वाली स्तुति सुनकर ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और देवताओं की ओर अभिमुख होकर उनसे कुशल प्रश्न पूछने लगे।

उन पुराण कवि ब्रह्मा के चारों मुखों से निकलती हुई वाणी से यह सिद्ध हो रहा था कि वाणी के सचमुच ही चार स्वरूप हैं।

ब्रह्मा बोले : "हे महापराक्रमी, दीर्घबाहु देवताओ, आप सब ने अपनी-अपनी शक्ति से अपने पद प्राप्त किये हैं। इस समय यहां आप एक साथ उपस्थित हुए हैं, आप सबका स्वागत है।

"पर यह क्या बात है कि आपका तेज पहले जैसा नहीं दिखाई पड़ता? आपके मुख तुषार से धुंधले पड़े हुए ज्योति-पिंडों समान क्यों प्रतीत हो रहे हैं?

"वृत्र को मारने वाले इन्द्र के वज्र से भी इन्द्रधनुष की

सी सतरंगी चमक नहीं निकल रही है और चमक न रहने के कारण यह कुंठित हो गया-सा दिखाई पड़ रहा है।

"और वरुण के हाथ में विद्यमान इस पाश को क्या हो गया है ? इस पाश से तो कोई भी शत्रु बच कर नहीं जा सकता था। अब तो यह ऐसा निश्चेष्ट दिखाई पड़ रहा है, मानो मंत्र बल से बंधा हुआ कोई सांप हो।

"और कुबेर का गदाशून्य हाथ ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो कोई टूटी हुई शाखा वाला वृक्ष हो। यह उस पराजय का संकेत सा कर रहा है, जिसका कांटा अभी तक कुबेर के मन में गड़ा हुआ है।

"यमराज भी अपने दंड से भूमि को कुरेद रहे हैं। उनके इस अग्निदंड की चमक समाप्त हो गई है और अमोघ होते हुए भी यह इस समय बुझी हुई मशाल-सा दिखाई पड़ रहा है।

"और इन आदित्यों को क्या हुआ ? इनका उत्ताप और तेज समाप्त हो गया है। ये शीतल हो गये हैं। और अब तो ये चित्रलिखित-से ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं कि कोई भी जी चाहे जितनी देर तक इनकी ओर आँखें खोले देखता रहे।

"अत्यधिक बेचैन होने के कारण मरुतों का वेग भी टूट गया-सा प्रतीत होता है। इस समय ये उसी प्रकार उलटी दिशा में बह रहे हैं, जैसे सम्मुख कोई बड़ी बाधा आ पड़ने पर जलधारा उलटी बहने लगती है।

"रुद्रों के भी सिर झुके हुए हैं। उनके जटाजट शिथिल

पड़ गये हैं और शशि की कला उनके सिरों से झूलती दिखाई पड़ रही है। ऐसा प्रतीत है जैसे इनकी क्रोध से भरी हुंकार को किसी ने बलपूर्वक अन्दर ही रोक दिया है।

"कहीं ऐसा तो नहीं कि अपने-अपने पदों पर प्रभाव जमा चुकने के बाद आप लोगों को अधिक बलशाली किसी शत्रु ने परास्त करके उस स्थान से उसी प्रकार हटा दिया हो, जैसे बलवान् अपवाद साधारण नियम को हटा कर उसका स्थान स्वयं ले लेता है ?

"प्रिय देवताओ, यह बतलाइये कि आप सब सम्मिलित होकर मुझसे क्या अनुरोध करने आये हैं ? मैं तो संसार की केवल सृष्टि किया करता हूँ। उसकी रक्षा करना तो आप ही का काम है।"

तब इन्द्र ने अपने सहस्र नयनों से देवगुरु बृहस्पति को बोलने का संकेत किया। उसके हिलते हुए हजार नेत्र ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो मन्द पवन से कमलों का वन कम्पित हो उठा हो।

बृहस्पति के दो नयन ही इन्द्र के हजार नेत्रों से अधिक देख पाने में समर्थ थे। वस्तुत: बृहस्पति ही इन्द्र के नेत्र थे। इन्द्र का संकेत पाकर वह हाथ जोड़कर ब्रह्मा से कहने लगे :

"आपने जो यह कहा है कि हमारा स्थान किसी ने बल-पूर्वक छीन लिया प्रतीत होता है, वह ठीक ही है। आप घट-घट व्यापी हैं। आप से कोई बात छिपी कैसे रह सकती है ?

"तारक नाम का महाशक्तिशाली असुर आप से वर पाकर

बहुत उदंड हो गया है। और वह इस समय तीनों लोकों को कष्ट देने के लिए धूमकेतु के समान उठ खड़ा हुआ है।

"भय के कारण सूर्य उसके नगर में अपनी केवल उतनी ही किरणें भेजता है, जिनसे उसके नगर के सरोवरों में लगे हुए कमल खिल भर जाएं।

"चन्द्रमा भी अपनी सारी कलाओं को लेकर उसी की सेवा मे लगा रहता है। केवल महादेव के मस्तक पर विद्यमान एक कला को उसने अभी नहीं लिया है।

"कहीं फूल चुराने का अपराध सिर न लग जाय, इस भय से वायु उसके उद्यानों में तो चलता ही नहीं, स्वयं तारकासुर के निकट भी वह कभी पंखे की वायु से अधिक तेज नहीं चलता।

"ऋतुओं ने अपना आगे-पीछे आने का क्रम छोड़ दिया है। अब तो वे सब एक साथ मिलकर साधारण मालिनों की भांति सदा ही उसके लिये ढेर के ढेर फूल जुटाने में लगी रहती हैं।

"उसे उपहार देने योग्य रत्न जब तक पानी की तली में पड़े-पड़े बनकर तैयार होते रहते हैं, तब तक समुद्र बहुत ही अधीर हो उनके पूर्ण होने की प्रतीक्षा करता रहता है।

"वासुकि आदि नाग अपने फनों पर देदीप्यमान मणियां उठाये हुए रात के समय उसके यहाँ स्थिर दीपस्तम्भों की भाँति खड़े रहकर उसकी सेवा में लगे रहते है।

"उसका अनुग्रह प्राप्त करने के लिये इन्द्र भी बारम्बार कल्पवृक्ष से आभूषण इत्यादि लेकर उन्हें दूतों द्वारा उसके

पास भिजवाता रहता है, जिससे वह तारकासुर अनुकूल ही बना रहे।

"परन्तु प्रसन्न करने का इतना अधिक यत्न करने पर भी वह तीनों लोकों को सता ही रहा है। अपकार के बदले में अपकार करने से ही दुर्जन शान्त हो सकता है, उपकार करने से नहीं।

"नन्दनवन के जिन तरुओं पर से सुर-सुन्दरियां भी बड़ी दया के साथ नवपल्लव तोड़ा करती थीं, उन्हें वह हृदयहीन अब कटवाये डालता है।

"जब वह सोया होता है, उस समय आँसू बहाती हुई देव-कुमारियां उसपर चवर डुलाती हैं। इन चवरों के हिलने से उत्पन्न वायु उनकी आहों के समान होती है।

"मेरु पर्वत के जिन शिखरों को सूर्य के रथ के घोड़े खूंदते हुए जाया करते थे, उन्हें उसने उखाड़ कर अपने महलों में रख लिया है और उनसे खिलौनों के पहाड़ बना लिये हैं।

"मन्दाकिनी में अब केवल दिग्गजों के मद से मलिन जल ही शेष बचा है। स्वर्ण कमलों के वन तो उसने ले जाकर अपनी बावड़ियों में लगा लिये हैं।

"स्वर्ग के निवासी देवता अब संसार के दर्शन का आनन्द भी प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि उसके आ पहुंचने के भय से आकाश में विमानों के विचरण का मार्ग ही बन्द हो गया है।

"बड़े-बड़े यज्ञों में यजमानों द्वारा दी गई हवि को वह

मायावी तारक हम देवताओं के देखते-देखते ही अग्नि के मुख से छीन लेता है।

"उसने अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवा को भी बलपूर्वक छीन लिया है। यह उच्चैःश्रवा घोड़ा इन्द्र का दीर्घकाल में उपार्जित किया हुआ मानो सशरीर यश ही था।

"इस क्रूर तारक के विरुद्ध हमने जो-जो भी उपाय किये, सभी निष्फल रहे। जैसे भयंकर सन्निपात हो जाने पर प्रभावशाली ओषधियां भी व्यर्थ सिद्ध होती हैं।

"विष्णु के जिस चक्र पर हमने विजय की आशा रखी थी, वह भी जब जाकर उसके कंठ में लगा तो उससे चिनगारियां निकलने लगीं और ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे उसने एक और नया कंठाभूषण पहन लिया हो।

"ऐरावत को परास्त करने के बाद उसके हाथी अब पुष्करावर्तक आदि प्रलय-मेघों में टक्कर मार-मारकर किनारे तोड़ने का अभ्यास किया करते हैं।

"हे प्रभु, इसलिये अब हम इस तारक के संहार के लिये एक सेनापति उत्पन्न करना चाहते हैं, जैसे मोक्ष के अभिलाषी व्यक्ति जन्म-मरण के कष्ट को समाप्त करने के लिये कर्म का बन्धन काटने वाले धर्म को उत्पन्न करना चाहते हैं।

"देवताओं की सेना के रक्षक उस सेनापति को ही आगे करके देवराज इन्द्र शत्रुओं के यहाँ से विजय श्री को वापस लौटा लायेगा, जो इस समय उनके यहाँ बन्दिनी-सी पड़ी है।"

उनके इतना कहकर चुप हो जाने पर ब्रह्मा बोले।

उनकी वाणी मेघगर्जन के उपरान्त होने वाली वृष्टि की अपेक्षा अधिक मधुर थी।

"कुछ समय तक और प्रतीक्षा करो। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण हो जायगी। परन्तु इस कार्य को पूर्ण करने के लिए मैं कोई नई सृष्टि नहीं करूँगा।

"इस दैत्य को मुझ से ही ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, इसलिये उसका विनाश मेरे हाथों होना उचित नहीं है। अपने हाथ से बोये हुए विषवृक्ष को भी तो काटना ठीक नहीं लगता।

"उस समय उसने वर माँगा और वह मैंने उसे दे दिया। उसके तप की आग तीनों लोकों को जला डालने में समर्थ थी। वह इस वर को पाकर ही शान्त हुई।

"इस युद्धविद्या-विशारद तारकासुर का सम्मुख समर में सामना केवल महादेव जी के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही कर सकता है और कोई नहीं।

"वह परम ज्योतिःस्वरूप महादेव तमोगुण के अन्धकार से बहुत दूर हैं। उनकी महिमा की थाह न तो मैं ही लगा पाया हूँ और न विष्णु ही।

"अब आप लोग महादेव के संयत चित्त को हिमालय की कन्या उमा के सौन्दर्य द्वारा उसकी ओर आकृष्ट करने का यत्न कीजिये, जिस प्रकार कि चुम्बक मणि से लोहे को आकृष्ट किया जाता है।

"मेरे और शिव के वीर्य को केवल दो ही धारण कर सकती हैं। शिव के वीर्य को उमा और मेरे वीर्य को जल, क्योंकि

उसमें शिव का विशेष अंश है ।

"उन नीलकंठ शिव का पुत्र तुम्हारा सेनापति बनकर अपने पराक्रम द्वारा बन्दिनी सुरबालाओं की वेणियों का मोचन करेगा ।"

देवताओं से इतना कहकर ब्रह्मा अन्तर्द्धान हो गये । 'अब क्या करना चाहिए?' यह सोचते हुए देवगण भी स्वर्ग की ओर चल दिए ।

स्वर्ग में पहुँच कर इन्द्र ने कार्यसिद्धि के लिये अधीर होकर कामदेव का स्मरण किया ।

और उसके स्मरण करने के साथ ही कामदेव हाथ जोड़-कर इन्द्र के सम्मुख उपस्थित हुआ । सुन्दर नारी की भौंहों के समान घुमावदार धनुष उसने अपने उस कंठ में डाला हुआ था, जिस कठ में उसकी पत्नी रति के कंकणों के चिन्ह दिखाई पड़ रहे थे । उसका सहचर वसन्त हाथ में आम्र की नवमंजरियों का बाण लिये हुए उसके साथ आया था ।

तीसरा सर्ग

अन्य सब देवताओं को छोड़कर उस कामदेव के ऊपर इन्द्र के सहस्र नेत्र एक साथ जा पड़े। स्वामी लोगों की दृष्टि मे अनुचरो का महत्व प्रायः प्रयोजन के अनुसार घटता-बढता रहता है।

इन्द्र ने उसके लिये अपने आसन पर ही स्थान बनाते हुए पास बुलाकर कहा : "आओ, यहाँ बैठो।" कामदेव ने स्वामी के इस अनुग्रह को सिर झुकाकर स्वीकार किया और बोला :

"हे गुणों के पारखी, आज्ञा कीजिये कि वह कौन-सा काम है, जिसे आप तीनों लोकों मे कही भी मुझ से कराना चाहते है ? आपने स्मरण करके मुझ पर जो अनुग्रह किया है, अब आज्ञा देकर उसमें और वृद्धि कीजिये।

"वह कौन व्यक्ति है जिसने आपके पद को पाने की अभिलाषा से अत्यन्त घोर तप करके आपके मन में ईर्ष्या उत्पन्न कर दी है। वह अभी मेरे इस शर-समेत धनुष से परास्त हुआ जाता है।

"जन्म-मरण के क्लेश से छुटकारा पाने के मुक्ति मार्ग का कौन पथिक आपकी आँखों का कांटा हो रहा है ? भौंहें तिरछी करके सुन्दरियों द्वारा किये गये कटाक्षों के जाल में बन्धा वह अब चिरकाल तक यों ही पड़ा रहेगा।

"आप एक बार बता भर दीजिये, फिर मैं उसके, चाहे उसने शुक्राचार्य से ही नीतिशास्त्र क्यों न पढ़ा हो, अर्थ और धर्म का अत्यासक्ति द्वारा उसी प्रकार नाश कर दूँगा, जैसे बाढ़ की जलराशि नदी के दोनों तटों को तोड़-फोड़ डालती है।

"या फिर यह बताइये कि ऐसी कौन-सी पतिव्रता सुन्दरी है, जो अपने सौन्दर्य के द्वारा आपके चंचल मन को लुभा बैठी है और जिसके लिये आप चाहते है कि वह समस्त लज्जा त्याग कर अपनी कोमल बाहें आपके गले में डाल दे।

"हे कामिश्रेष्ठ, वह कौन-सी कामिनी है, जिसने आपके किसी अन्य रमणी के साथ रमण के वृत्तान्त को जानकर इतना कोप किया कि आपके पैरों पड़ कर मनाने पर भी अपना मान नहीं त्यागा? मैं उसके मन में ऐसा तीव्र पश्चात्ताप उत्पन्न करूँगा कि उसे नवपल्लवों की सेज पर ही जाकर लेटना पड़े।

"आप निश्चिन्त रहिये। आपका वज्र विश्राम ही करता रहे। आप मुझे बता भर दीजिये कि आप किस दैत्य को बलहीन करना चाहते हैं? फिर देखिये कि मैं अपने बाणों से उसके भुजबल को ऐसा नष्ट कर दूँगा कि वह क्रोध से कम्पित अधरों वाली स्त्रियों को देखकर डरने लगे।

"आपकी कृपा बनी रहे तो मैं केवल एक वसन्त की सहायता पाकर अपने फूलों के बाणों से ही पिनाकपाणि महादेव का भी धैर्य छुड़ा दूँ, फिर अन्य धनुर्धारी तो मेरे सामने हैं ही क्या?"

अब तक इन्द्र चौकड़ी लगाये बैठे थे, अब उन्होंने अपने पैर नीचे पडी चौकी पर रख लिये। जो बात उनके मन में थी, उसी को पूरा कर सकने का कामदेव ने दम भरा था। वह कामदेव से कहने लगे :

"मित्र तुमने जो कुछ कहा, ठीक ही है। मेरे दो ही अस्त्र है, एक वज्र और दूसरे तुम। तपोवल से बली लोगों के सम्मुख वज्र तो कुठित हो जाता है, परन्तु तुम्हारी गति सर्वत्र है और तुम्हारे लिये सब कुछ साध्य है।

"मै तुम्हारी सामर्थ्य को जानता हूँ। इसी से अपने बराबर समझकर ही तुम्हें एक भारी काम सौपने लगा हूँ। शेषनाग पृथ्वी को धारण किये रहते है, यह देखकर ही भगवान् कृष्ण उन्हे अपने देह का भार उठाने में नियुक्त करते है।

"महादेव पर बाण चला सकने की बात कहकर तुमने हमारा कार्य करना स्वीकार-सा कर लिया है। बस, यह समझ लो कि बलवान शत्रुओं से सताये गये देवता तुमसे यही कार्य करवाना चाहते हैं।

"ये देवता विजय पाने के लिये शिव के वीर्य से उत्पन्न पुत्र को अपना सेनापति बनाना चाहते हैं। ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुए वह शिव इस समय ब्रह्मचर्य व्रत धारण किये हुए है और वह केवल एक तुम्हारे ही बाण से विचलित हो सकते है।

"इस समय ऐसा प्रयत्न करो, जिससे जितेन्द्रिय महादेव हिमालय की कन्या पार्वती पर मुग्ध हो जायं। ब्रह्मा जी ने

दु:खी होता था, विधाता की प्रवृत्ति प्राय: सब गुणों को एकत्र न रखने की ही है।

द्वितीया-शशि के आकार वाले अधखिले पलाश सुमन अत्यन्त लाल हो उठे। लगता था वसन्त ने वनस्थलियों से अभी संभोग किया है और उसी से ये नखों के खरोचों के चिन्ह बन गये हैं।

भ्रमरमाला वसन्त शोभा की आँखों का अंजन बन गई, तिलक के फूल तिलक बन गये और नए लाल लाल कोमल आम्रपल्लव अधरराग के रूप में सुशोभित हो गये।

प्याल की मंजरियों से उड़कर पराग आँखों में गिरने लगा; उससे व्याकुल दृष्टि वाले मदोद्धत हरिण वायु के प्रवाह की ओर मुख करके दौड़ने लगे। वनस्थली उनके सूखे पत्तों पर दौड़ने से मर्मर-ध्वनि से भर उठी।

आम की कोंपल खाने के कारण कसैले कंठ वाली कोयल जो कुछ मधुर-मधुर कूकने लगी, वही मानो माननियों का मान भंग करा देने वाली कामदेव की वाणी बन गई।

हिम हट गया, इससे किन्नरियों के अधर विशद हो उठे। उनकी मुखछवि गौर हो उठी, और उनके चित्रित मुखों पर पसीना आने लगा।

महादेव के तपोवन में रहने वाले तपस्वी उस असमय के वसन्तागमन को देखकर भी प्रयत्नपूर्वक विकारों का दमन करके जैसे-तैसे अपने मन को वश में रखे रहे।

जब रति के साथ कामदेव ने पुष्प-धनुष चढ़ाये उस प्रदेश

में प्रवेश किया, तब सब चराचरों के जोड़े अपने अधिकतम स्नेहयुक्त भाव को क्रियाओं में प्रदर्शित करने लगे।

भ्रमर अपनी प्रियतमा का अनुसरण करता हुआ उसके साथ ही कुसुम पात्र में मधुपान करने लगा और स्पर्श सुख से आँख मीचकर खड़ी हुई हरिणी को हरिण अपने सींग से खुजलाने लगा।

हथिनी स्नेह में भरकर कमल-सुवासित जल अपनी सूंड से हाथी को पिलाने लगी। चक्रवाक कमलनालों को चख-चखकर अपनी प्रियतमा को देकर प्रसन्न करने लगा।

किन्नरगण गाते-गाते बीच में रुककर पसीने से बिगड़ी चित्रकारी वाले किन्नरियों के मुखों को चूमने लगे। किन्नरियों की पुष्पासव से भरी हुई आँखें उनके मुख को और भी सुन्दर बना रही थीं।

ढेर के ढेर प्रसूनों के गुच्छे जिनके स्तनों के समान थे और जो नवाँकुर रूपी अधरों से मनोहर हो उठी थीं, ऐसी लता-वधुओं ने भी अपने विनम्र भुजबन्धन तरुओं के कंठों में डाल दिये।

ऐसे समय अप्सराओं के गीतों को सुनते हुए भी महादेव समाधिमग्न हो गये। आत्मविजेताओं की समाधि ऐसे विघ्नों से भंग नहीं हुआ करती।

तब बायें हाथ में स्वर्णजटित बेंत लिये नन्दी लतागृह के द्वार पर आया और उसने मुख पर एक अंगुली रखकर गणों को संकेत किया कि वे चंचलता प्रदर्शित न करें।

नितम्बों के ऊपर उसने मौलश्री के फूलों की करधनी पहनी हुई थी। लगता था, गुणज्ञ कामदेव ने अपने धनुष की दूसरी प्रत्यंचा उपयुक्त स्थान पर धरोहर रखी हुई है।

सुगन्धित निश्वास के लोभ से अपने बिम्बाधरों पर मँडराते हुए भ्रमर को वह बार-बार संभ्रम के साथ हाथ में लिये हुए लीला कमल से उड़ा रही थी।

उस सर्वांगसुन्दरी पार्वती को, जो सौन्दर्य में रति को भी लजा रही थी, देखकर कामदेव को जितेन्द्रिय महादेव पर विजय पाने की कुछ आशा बन्धी।

इधर तो पार्वती अपने भावी पति महादेव के तपोवन के द्वार पर पहुँची और उधर महादेव ने अपने अन्दर 'परमात्मा' नामक लोकोत्तर ज्योति का दर्शन करके अपनी गम्भीर समाधि समाप्त की।

धीमे से प्राणायाम को तोड़कर उन्होंने पर्यंकबन्ध आसन छोड़ा, परन्तु वे इतने से ही इतने भारी हो गये कि शेषनाग को भूमि का भार सम्हालना कठिन हो गया।

नन्दी ने आकर निवेदन किया कि 'शैलसुता पार्वती सेवा के लिये उपस्थित हुई हैं' और भौंह के संकेत मात्र से अनुमति पाकर बाहर जाकर उसे लिवा लाया।

विनयपूर्वक प्रणाम करने के बाद पार्वती की सखियों ने अपने हाथ से चुने हुए वसन्त के फूल और नवपल्लवों के टुकड़े महादेव के चरणों में बिखेर दिये।

उमा ने भी सिर झुकाकर महादेव को प्रणाम किया।

उसकी काली अलकों में सुशोभित कर्णिकार और कानों पर रखे हुए नवपल्लव वहीं गिर पड़े।

'तुम्हें अनन्य प्रेमी पति प्राप्त हो' यह महादेव ने ठीक ही आशीर्वाद दिया। महात्माओं की वाणी कभी मिथ्या थोड़े ही हो सकती है!

कामदेव बाण चलाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। अब वह आग में कूदने के अभिलाषी पतंग की भांति उमा के सम्मुख बैठे हुए महादेव पर लक्ष्य साधता हुआ बार-बार अपने धनुष की डोरी पर हाथ फेरने लगा।

इसके बाद गौरी ने तपस्वी महादेव को अपने ताम्र-गौर कर से सूर्य की धूप में सुखाई हुई गंगा मे उत्पन्न कमलों के बीजों की माला भेंट की।

प्रेमीजन-प्रिय होने के कारण महादेव ने तो उस माला को लेने के लिये हाथ बढ़ाया और उधर कामदेव ने अपने पुष्प-धनुष पर 'सम्मोहन' नाम का बाण चढ़ा लिया, जिसका वार कभी खाली नहीं जाता।

चन्द्रोदय के समय महासमुद्र जिस प्रकार विक्षुब्ध हो उठता है, उसी प्रकार अधीर होकर महादेव उमा के बिम्बा-फलों के समान अरुण अधरों वाले मुख की ओर देखने लगे।

गौरी को भी सहसा रोमांच हो आया, जिससे उसका सर्वांग खिले हुए कदम्ब पुष्प-सा हो उठा। इससे उसका मनो-भाव छिपा न रहा। वह आंखें फेर कर तनिक तिरछी होकर

लजाई-सी खड़ी रह गई। इससे उसका मुख और भी सुन्दर हो उठा।

परन्तु इन्द्रियवशी महादेव ने बलपूर्वक इन्द्रियों की चंचलता का दमन करके अपने मनोविकार का कारण जानने के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

उन्होंने देखा कि कामदेव दाएँ हाथ से कान तक प्रत्यंचा खींचे, लक्ष्य साधने के लिये कन्धे झुकाये और बायां पैर मोड़ कर वीरासन से बैठा हुआ उन पर तीर छोड़ने को तैयार है।

तपभंग के कारण और भी प्रचण्ड हुये क्रोध से उनकी भौंहें तन गईं। उनके तमतमाते हुए मुख की ओर देखना तक असम्भव हो गया। और उनके तीसरे नेत्र से एकाएक प्रचंड लपटें मारती हुई अग्नि निकलने लगी।

'क्रोध न करो, प्रभु! क्रोध न करो' अभी देवताओं की यह पुकार आकाश में ही थी कि महादेव के नेत्र से निकली उस अग्नि ने कामदेव को जलाकर राख कर दिया।

विपत्ति की तीव्रता के कारण रति अचेत हो गई, जिससे उसकी सब इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो गईं। यह भी रति के लिये भला ही हुआ, क्योंकि इससे उसे कम से कम कुछ देर तक तो पति की मृत्यु का पता ही न चला।

जैसे विशाल वृक्ष को तोड़ कर आकाश से गिरने वाली बिजली तुरन्त विलुप्त हो जाती है, उसी प्रकार तपस्वी महादेव भी तप के विघ्न स्वरूप स्त्री सामीप्य से बचने के लिये अपने अनुचर गणों समेत अन्तर्द्धान हो गये।

पार्वती लज्जा से जड़-सी हो गई। उसके उन्नतमस्तक पिता की इच्छा और उसका अपना सौन्दर्य, दोनों ही असफल हुए। उसकी लज्जा इसलिये और भी बढ़ गई कि यह सब उसकी सखियों की उपस्थिति में हुआ। जैसे-तैसे अपने-आप को सम्हाल कर वह सूने मन से घर की ओर चल पड़ी।

हिमालय तुरन्त वहां पहुँचा और उसने पार्वती को चट से अपनी बांहों में उठा लिया। महादेव के क्रोध के डर से पार्वती की आँखें मुंदी हुई थीं। उसे देखकर हिमालय का मन अपनी पुत्री के प्रति दया से भर उठा और उसे लेकर वह तेज़ी से भाग खड़ा हुआ। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो ऐरावत अपने दांतों पर उलझी हुई किसी कमल बेल को लिये जा रहा हो।

चतुर्थ सर्ग

इसके पश्चात् नियति ने मूर्छित हुई काम की पत्नी रति को नव-वैधव्य की असह्य वेदना सहने के लिये सचेत कर दिया।

मूर्च्छा की समाप्ति पर उसने अपनी आँखों को खोलकर खूब ध्यान से देखा, परन्तु अपनी उन अतृप्त आँखों से उसे उन आँखों का प्यारा वह कामदेव दिखाई नही पड़ा, जो सदा के लिये लुप्त हो गया था।

'प्राणनाथ तुम अभी तक जीवित हो' यह कहकर वह ज्यों ही उठकर सामने देखने लगी, उसे केवल महादेव के कोपानल में जले हुए कामदेव की पुरुष के आकार में पड़ी हुई भस्म ही दिखाई पड़ी।

वह विह्वल होकर भूमि पर लोटने लगी। जिससे उसके स्तन धूल से धूसरित हो उठे। वह बाल बिखेर कर विलाप करने लगी। और उसके विलाप से वनस्थली भी उसके दुःख में दुःखित-सी हो उठी।

"अपने अनुपम सौन्दर्य के कारण तुम्हारा जो शरीर-विलासी लोगों का उपमान बना हुआ था, हाय, आज उसकी यह दशा हो गई है और फिर भी मेरा हृदय फट नहीं गया। सचमुच ही हम स्त्रियाँ बहुत कठोर होती हैं।

"जैसे बान्ध टूटने पर जल का प्रवाह कमलिनी को छोड़कर भाग खड़ा होता है, उसी तरह अपने आसरे जीने वाली मुझको छोड़कर, मुझसे पल भर मे नाता तोड़कर तुम कहाँ चले गये।

"तुमने मुझे रुष्ट करने वाला कोई काम नही किया और न मैंने ही ऐसा कोई काम किया है, जिससे तुम रुष्ट हुए हो। फिर बिलखती हुई रति को तुम अकारण ही अपने दर्शन से वंचित क्यों कर रहे हो ?

"एक बार तुमने भूल से मेरे सामने अपनी किसी अन्य प्रिया का नाम ले दिया था, जिस पर मैंने तुम्हे अपनी मेखला से बांध दिया था, और अपने कान में पहने हुए कमल से पीटा था। तब कमल का पराग आँखों में पड़ जाने से तुम्हारी आँखे दुःखने लगी थीं। कहीं उसी बात को याद करके तो इस समय नही रूठे हुए हो ?

"तुम कहा करते थे कि तुम मेरे हृदय में निवास करती हो। मे अब समझी हूँ कि वह तुम्हारा छल था। यदि यह छल न होता तो यह कैसे सम्भव था कि तुम्हारे भस्मशेष हो जाने पर भी मैं अक्षत रह जाती ?

"तुम अभी-अभी परलोक गये हो और मैं भी अभी उसी मार्ग पर आने वाली हूँ, जिससे तुम गये हो। विधाता ने संसार को धोखा दे दिया, क्योंकि सारे प्राणियों का सुख तो तुम्हारे ही हाथ था।

"रजनी के तिमिर से ढके हुए नगर के मार्गो पर चलती

हुई, मेघ गर्जन को सुनकर घबराई हुई कामिनियों को उनके प्रियों के घरों तक तुम्हारे सिवाय और कौन पहुँचा पायेगा ?

"तुम्हारे अभाव में तरुणियों का वह आसव पान, जिससे उनकी लाल-लाल आँखें घूमने-सी लगती हैं और एक-एक शब्द पर उनकी वाणी लड़खड़ाने लगती है, अब केवल बिडम्बना मात्र बनकर रह जायगा।

"तुम्हारा प्रिय मित्र चन्द्रमा तुम्हारे देहावसान को जान अपने उदय को निष्फल समझकर कृष्णपक्ष बीत जाने पर भी बहुत कठिनाई से ही अपनी कृशता को त्याग पायेगा।

तुम्हीं कहो, वह सुन्दर हरे और अरुण डंठल वाला आम का नया बौर अब किसका बाण बना करेगा, जिसके निकलने की सूचना कोयल अपनी मधुर कूक द्वारा दिया करती है ?

"यह काले भौंरों की पंक्ति, जिसे तुमने पहले बहुत बार अपने धनुष की डोरी के स्थान पर प्रयुक्त किया था, इस समय अपने करुणाजनक स्वर में मुझ अभागिनी के साथ रो सी रही है।

"अब तुम फिर उठकर अपना वही मनोहर शरीर धारण कर लो और मधुर कूजन में स्वभाव से ही कुशल इस कोकिला को आदेश दो कि यह प्रेमियों के मध्य रतिदूती का कार्य करे।

"जब मैं याद करती हूँ कि तुम किस प्रकार मेरे पैरों पर सिर रखकर प्रेम की याचना किया करते थे और किस प्रकार कांपते हुए मुझे गले से लगाकर एकान्त में मुझसे रमण

किया करते थे, तो मुझे किसी प्रकार शान्ति नहीं हो रही ह।

"हे रतिपंडित, तुमने अपने हाथों से इन वसन्त पुष्पों से मेरा श्रृंगार किया था। मैं तो अब भी उन पुष्पाभरणों को धारण किये हुए हूँ, परन्तु तुम्हारा वह सुन्दर शरीर दिखाई नहीं पड़ रहा।

"तुम अभी मेरे दाहिने पैर में ही महावर लगा पाये थे कि निष्ठुर देवताओं ने तुम्हें अपने काम के लिये बुला लिया। अब मेरे बायें पैर में महावर लगाकर इस अधूरे काम को पूरा तो कर दो।

"स्वर्ग की अप्सराएं तुम्हें मुग्ध कर पायें, इससे पहले ही मैं पतंग की भांति अग्नि में जलकर तुम्हारे पास आकर तुम्हारी गोदी में अपना आसन जमाऊँगी।

"हे प्रिय! यद्यपि मैं अभी तुम्हारे साथ ही आने वाली हूँ, फिर भी यह अपवाद तो बन ही गया कि रति कामदेव के बिना कुछ क्षण तो जीवित रह ही गई थी।

"तुम परलोक चले गये हो। इस समय तुम्हारा अंतिम श्रृंगार भी किस प्रकार करूँ, क्योंकि तुम्हारे तो शरीर और प्राण दोनों की एक साथ ही यह विचित्र दशा हो गई है?

"तुम जो धनुष अपनी गोदी में रखकर बाण को सीधा करते हुए वसन्त से वार्तालाप किया करते थे और उस समय बीच-बीच में तिरछी चितवन से मुझे देखा करते थे। वह मुझे किसी भी तरह भूलता नहीं है।

"तुम्हारे लिये फूलों का धनुष बनाने वाला तुम्हारा मित्र

वसन्त कहां गया ? कहीं उसे भी महादेव न अपने क्रोध की आग में जलाकर नष्ट तो नही कर दिया ?"

उसके विलाप के ये शब्द वसन्त के हृदय में विष-बुझे तीर की भांति जाकर गड़ गये और उनसे आहत-सा होकर वह रति को सान्त्वना देने के लिये उसके पास पहुँचा।

उसे देख-देखकर रति और भी फूट-फूटकर रोने लगी और अपनी छाती पीटने लगी। इष्ट-बन्धुओं को सामने देखकर दु:ख का द्वार खुल-सा जाता है।

उसे देखकर व्याकुल रति कहने लगी : "वसन्त, देखो तो, तुम्हारे मित्र की यह क्या दशा हुई है ? कबूतर के समान रंग वाली कामदेव की इस भस्म को वायु कण-कण करके इधर-उधर बिखेर रहा है।

"हे कामदेव, अब तो दर्शन दो, क्योंकि यह वसन्त तुम्हारे दर्शन के लिये उत्सुक खड़ा है। पुरुषों का प्रेम स्त्रियों से भले ही सुदृढ़ न हो, किन्तु अपने मित्रों के साथ तो अचल ही होता है।

"तुम्हारे इसी मित्र ने तो सुरासुरों समेत इस समस्त संसार को तुम्हारे कमलतन्तु की डोरी वाले धनुष का आज्ञाकारी बनाया था।

"वसन्त, तुम्हारा वह मित्र कामदेव वायु से बुझे हुए दीप की भांति वापस नहीं आ रहा। मैं उस दीप की बत्ती के समान हूं, जो अब इस असह्य विपत्ति के कारण केवल धुआं दे रही हूं।

"नियति ने काम का वध करते समय मुझे छोड़कर वध

का केवल अधूरा कार्य किया है। क्योंकि आश्रय देने वाले वृक्ष को जब हाथी तोड़ता है तो उसके सहारे लिपटी लता भी गिर जाती है।

"हे वसन्त, अब बन्धुत्व के नाते इतना कार्य अवश्य कर दो कि मेरे लिये चिता तैयार करके मुझे उनके पास तक पहुँचा दो।

"चांदनी चन्द्रमा के साथ ही चली जाती है और बिजली मेघ के साथ ही विलीन हो जाती है। इस बात को तो अचेतन पदार्थ भी समझते हैं कि स्त्रियों को पति के साथ ही जाना होता है।

"अपने प्रिय की इसी उत्तम भस्म से अपने स्तनों का लेप बनाकर मैं नवपल्लवों के बिस्तर के समान धधकती हुई चिता पर आरोहण करूँगी।

"हे सौम्य, तुमने पहले बहुत बार हम दोनों के लिये फूलों की सेज बनाने में सहायता की है। आज मैं पैरों पड़कर तुमसे यह अनुरोध कर रही हूँ; तुम मेरे लिये शीघ्र ही चिता तैयार कर दो।

"जब चिता की आग जल उठे तब तुम उसे दक्षिण वायु चलाकर और भी धधका देना। क्योंकि तुम्हें तो मालूम ही है कि कामदेव मेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।

"इतना सब करने के बाद हम दोनों को एक ही जलांजलि देना। तुम्हारा वह मित्र कामदेव इस जल को परलोक में बिना बांटे मेरे साथ ही पियेगा।

"और श्राद्ध के समय, हे वसन्त, कामदेव के लिये हिलते हुए नवपल्लवों वाली आम्र की मंजरियां अवश्य देना, क्योंकि तुम्हारे मित्र को आम्र की मंजरियां बहुत प्रिय थीं।"

इस प्रकार जब रति अपना शरीर त्यागने के लिये तैयार हो रही थी, तभी आकाशवाणी हुई, जिससे रति को उसी प्रकार शान्ति मिली, जिस प्रकार सरोवर सूख जाने से बेचैन हुई मछली को पहले-पहल हुई वर्षा से शान्ति मिलती है।

"हे कामदेव की पत्नी, तुझे तेरा पति फिर शीघ्र ही प्राप्त हो जायगा। वह कामदेव महादेव के नेत्र की आग में जलकर किसलिये भस्म हुआ है, उसका कारण सुन।

"एक बार प्रजापति ब्रह्मा के मन में अपनी पुत्री के प्रति कामभाव जाग उठा था। उस समय ब्रह्मा ने अपने मनोविकार का दमन करके कामदेव को शाप दिया था। उसी का यह फल है।

"जब धर्म ने ब्रह्मा से अनुरोध किया कि वह कामदेव को दिये गये अपने शाप को लौटा लें, तो उन्होंने इस शाप की अवधि बताते हुए कहा कि जब पार्वती से प्रसन्न होकर महादेव उससे विवाह कर लेंगे तब वह आनन्द प्राप्त करके कामदेव को शरीर-दान देंगे। ठीक ही है कि जैसे अमृत और वज्र दोनों ही बादलों में रहते हैं, उसी प्रकार संयमी महापुरुषों के हृदय में क्रोध और दया दोनों का निवास होता है।

"इसलिये हे सुन्दरी, अपने इस शरीर को नष्ट मत कर। इसी शरीर से तेरे प्रिय का फिर मिलन होगा। ग्रीष्मऋतु

में नदी चाहे सूख जाय, पर वर्षाऋतु में वह फिर जल से भर भी तो जाती है ।"

इस प्रकार न जाने किस अदृश्य तत्व ने आकर रति के मरने के संकल्प को शिथिल कर दिया और उसका सहारा पाकर कामदेव के मित्र वसन्त ने रति को समझा-बुझाकर सान्त्वना दी ।

इस विपत्ति के कारण कृश हुई रति शाप की अवधि पूर्ण होने की उसी प्रकार प्रतीक्षा करने लगी, जैसे दिन में निकले हुए चन्द्रमा की धुंधली निस्तेज कला संध्याकाल की प्रतीक्षा किया करती है ।

पाँचवाँ सर्ग

पिनाकधारी शिव ने जब पार्वती के देखते-देखते कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया तो उसके मनोरथ चूर-चूर हो गये। वह मन ही मन अपने रूप को धिक्कारने लगी। सौन्दर्य की सफलता तो तभी है, जब वह प्रिय को मुग्ध कर सके।

उसकी इच्छा हुई कि वह समाधि लगाकर अपनी तपस्या द्वारा अपने रूप को सफल बनाये। ऐसा पति और ऐसा प्रेम अन्य किसी प्रकार प्राप्त भी कैसे हो सकता है ?

शिव के प्रति अनुरक्त हुई अपनी पुत्री को तप करने के लिये उद्यत देखकर मेना ने उसे छाती से लगा लिया और कठोर तपस्या करने से रोकने के लिये उमा से कहने लगी :—

"बेटी, तुम्हारे तो घर में ही मनोकामना पूर्ण करने वाली देवियां विद्यमान हैं। कहाँ तो कठोर तपस्या और कहां तुम्हारा यह शरीर ! शिरीष का फूल भ्रमर के सुकुमार चरण को तो जैसे-तैसे सह भी ले, किन्तु पक्षी के चरण का आघात नहीं सह सकता।"

परन्तु पार्वती का संकल्प दृढ़ था। समझा-बुझाकर भी मेना उसे तपस्या करने के प्रयत्न से रोक नहीं सकी। अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये दृढ़संकल्प वाले मन और नीचे की ओर बहते हुए जलप्रवाह को कौन फेर सकता है ?

उसकी यह मनोकामना उसके पिता हिमालय को ज्ञात हो चुकी थी। तभी एक बार मनस्विनी पार्वती ने अपनी सखी द्वारा अपने पिता से यह प्रार्थना की कि वह उसे वन में जाकर अभीष्ट सिद्धि के लिये तप करने की अनुमति प्रदान करे।

पार्वती के तीव्र अनुराग को देखकर हिमाचल का मन प्रसन्न हो गया। उस महिमाशाली पिता ने पार्वती को तप के लिए वन में जाने की अनुमति दे दी। और पार्वती हिमालय के शिखर पर चली गई। इस शिखर पर अनगिनत मोर निवास करते थे। बाद में जाकर इस शिखर का नाम ही 'गौरीशिखर' पड़ गया, क्योंकि यहीं गौरी ने तप किया था।

अडिग निश्चय वाली पार्वती ने अपना वह हार उतार कर एक ओर रख दिया, जिसकी मोती की चंचल लड़ियों की बार-बार रगड़ खाने से उसके स्तनयुगल पर लगा हुआ चन्दन का लेप पुछ गया था और उसने बाल-सूर्य के समान अरुण रंग वाला वल्कल वस्त्र धारण कर लिया। उसके स्तन युगल के उभार के कारण वल्कल के जोड़ फटने से लगे।

उसका सुन्दर मुख जटाओं के साथ भी वैसा ही प्यारा लगता था जैसा पहले उसकी सवारी हुई अलकों से लगा करता था। कमल केवल भ्रमर पंक्तियों के साथ ही सुन्दर नहीं लगता, बल्कि काई से सना होने पर भी रम्य दिखाई पड़ता है।

उसने नियम पालन के लिये तिहरी मूँज की रस्सी की करधनी कटि में धारण की, जिसके चुभने से प्रतिक्षण रोंगटे

खड़े होते रहते थे। जब उसने पहले-पहल उसे कमर में बान्धा तो वह सारा स्थान लाल हो उठा, जहाँ करधनी बान्धी गई थी।

जिन हाथों से वह अपने होंठ रंगा करती थी और स्तनों पर लगे अंगराग से रंगी हुई गेंद से खेला करती थी, उन्हीं हाथों को अब उन कामों से हटाकर उसने कुशा उखाड़ने में लगा दिया, जिससे उसकी अंगुलियां लोहुलुहान हो गईं। उन्हीं हाथों से अब वह रुद्राक्ष की माला भी फेरने लगी।

बहुमूल्य सेज पर सोते हुए करवट बदलते समय अपने ही बालों में से गिरे हुए फूलों के चुभने से भी जिसे कष्ट होता था, वही पार्वती अब भूमि पर बिना कुछ बिछाये अपनी बांह का तकिया बनाकर बैठी-बैठी ही सोने लगी।

उस व्रतधारिणी पार्वती के अपनी विलास चेष्टाएं कोमल लताओं के पास और चंचल चितवन हरिणियों के पास धरोहर सी रख दी थी, जहाँ से समय आने पर उन्हें फिर वापस लिया जा सके।

निरालस्य रहकर वह स्वयं ही पौधों को स्तनों जैसे घड़ों से पानी दे-देकर बड़ा करने लगी। इन पहले जन्म ले चुके पौधों के प्रति पार्वती के पुत्र-वात्सल्य को बाद में जन्म लेकर कुमार स्कन्द भी दूर नहीं कर सकेगा।

वह हरिणों को मुट्ठी भर-भर कर जंगली धान खिलाया करती, इससे हरिण उससे इतने हिल गये थे कि कभी-कभी

वह उत्सुकतावश सामने बिठाकर हरिणों की आँखों से अपनी सखियों की आँखों नापा करती थी।

वह उमा स्नान करके, हवन कर चुकने के पश्चात् वल्कल वस्त्र की ओढ़नी पहनकर अध्ययन करने बैठ जाती थी। उसके दर्शन करने के लिये ऋषि लोग आने लगे। तपस्वियों का गौरव आयु से नहीं तप से नापा जाता है।

उसके तपोवन में एक-दूसरे के शत्रु पशुओं ने भी आपस का वैर-भाव त्याग दिया था। वहाँ के वृक्ष अतिथियों के आगमन पर उनकी इच्छा के अनुसार फल देकर अतिथि सत्कार करते थे। एक नई बनी हुई कुटिया के अन्दर यज्ञकुंड में अग्नि प्रज्ज्वलित रहती थी। इस प्रकार वह आश्रम मन को पवित्र कर देता था।

जब पार्वती को लगा कि इतनी प्रारम्भिक तपस्या से अभीष्ट फल मिलता दिखाई नहीं पड़ता, तो उसने अपने शरीर की सुकुमारता की परवाह छोड़कर प्रचण्ड तप करना शुरू कर दिया।

जो पार्वती गेंद से खेलते-खेलते भी थक जाती थी, वही अब बड़े-बड़े तपस्वियों के समान तप करने लगी। उसका शरीर अवश्य ही स्वर्ण कमल से बना हुआ था, जो प्रकृति से सुकुमार होते हुए सारवान भी था।

गरमियों के दिनों में वह चारों ओर आग जलाकर बीच में खड़ी रहती थी। उसकी कमर बहुत पतली थी और होठों पर मधुर मुस्कान खेलती रहती थी। वह आँखों को चुँधिया देने

वाले सूर्य के प्रकाश पर विजय पाकर एकटक सूर्य की ही ओर देखती रहने लगी।

इस प्रकार की किरणों से तप-तप कर उसके मुख की कान्ति कमल के समान अरुणाभ हो उठी। केवल उनकी आँखों के किनारे धीरे-धीरे सांवले पड़ने लगे।

बिना मांगे प्राप्त हो जाने वाला वर्षा जल और चन्द्रमा की रसभरी किरणें, केवल ये दो वस्तुएं उसका उपवास के उपरान्त का भोजन थीं। जिन साधनों द्वारा वृक्ष अपना जीवन बिताते हैं, उनके अतिरिक्त पार्वती ने भी कोई साधन अपने लिये नहीं रखा था।

आकाश से पड़ने वाली धूप और चारों ओर जलती हुई अग्नि के कारण पार्वती का शरीर अत्यन्त तप्त हो उठा और जब नये मेघों ने आकर जल बरसाना प्रारम्भ किया तो ग्रीष्म ऋतु से तपी हुई भूमि के साथ-साथ पार्वती के शरीर से भी भाप निकलकर ऊपर की ओर आकाश में उठने लगी।

वर्षा की प्रथम बूँदे जब उसके ऊपर पड़ीं तो क्षण भर तो वे उसकी पलकों पर ठहरी रहीं, उसके बाद वे लुढ़ककर उसके होंठों पर आ पड़ीं। होंठों से गिरने पर वे बूदें कठोर स्तनों पर गिरकर खंड-खंड हो गईं और फिर उनके पेट पर बनी हुई सिकुड़नों में से होती हुई बहुत देर पश्चात् उनकी नाभि तक पहुँच पाईं।

उन रात्रियों में जब रह-रहकर तेज हवा चलती थी और जोरदार वर्षा होने लगती थी, पार्वती बाहर खुले में ही एक

शिला पर लेटी रहती थी। उस समय रह-रहकर बिजली चमका करती थी, जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो काली रात आँखें खोल-खोलकर पार्वती के तप को देख रही हो और उसकी साक्षी हो।

जब पौष मास में रात्रि के समय तीव्र वायु बर्फ को उड़ाता हुआ चला करता था, उस समय वह पार्वती सारी रात जल में बैठे-बैठे बिता देती थी। सामने दूर कहीं पर चकवा-चकवी का जोड़ा एक-दूसरे के विरह में क्रन्दन करता रहता था जिसे सुनकर पार्वती के हृदय में उसके प्रति बड़ी कृपा और सहानुभूति का भाव जाग उठता था।

पार्वती सरोवर के जल में खड़ी रहती थी। उसके मुख से कमल की सुगन्ध उठा करती थी। उसके कांपते हुए होंठ कमल की पंखुरियों के जैसे प्रतीत होते थे और रात के समय उसके मुख के कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो हिमपात के कारण कमलों के जल जाने पर भी सरोवर में अभी तक कमल बने ही हुए हैं।

पेड़ों पर से स्वयं गिरे पत्तों को खाकर जीवन निर्वाह करना तप की सीमा समझी जाती है। परन्तु पार्वती ने स्वयं गिरे पेड़ों के पत्तों को खाना भी छोड़ दिया। इसीलिये बाद में मधुरभाषिणी पार्वती का नाम 'अपर्णा' पड़ गया।

इस प्रकार के अनेक व्रतों द्वारा कमलिनी के समान कोमल शरीर को दिन-रात सुखा-सुखाकर पार्वती ने कठोर शरीर वाले तपस्वियों के तप को भी नीचा दिखा दिया।

इसके बाद एक दिन उनके तपोवन में एक जटाधारी तरुण तपस्वी आया। उसने मृगछाला पहनी हुई थी। उसके हाथ में दंड था। उसका शरीर ब्रह्मचर्य के तेज से दमक रहा था। उसकी बातें अत्यन्त निःसंकोच थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो ब्रह्मचर्य आश्रम स्वयं ही शरीर धारण करके आ पहुँचा है।

अतिथि सत्कार में कुशल पार्वती ने बड़े आदर के साथ आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। मनस्वी लोग अपने समान आयु और प्रभाव वाले लोगों के साथ ही उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उनसे आदर का ही व्यवहार करते हैं।

वह युवा तपस्वी पार्वती द्वारा किये गये उचित सत्कार को ग्रहण करके और कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् सरल दृष्टि से पार्वती की ओर देखता हुआ बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे कहने लगा :

"कहिये, आपको यहाँ यज्ञ-क्रियाओं के लिये समिधायें और कुशाएं तो सरलता से प्राप्त हो जाती हैं? यहाँ का जल स्नान आदि कार्यों के लिये उपयुक्त तो है न? आप अपनी शक्ति के अनुसार ही तप करती हैं, कहीं उससे अधिक तो नही करतीं? क्योंकि ध्यान रखिये कि शरीर ही धर्म का सब से बड़ा साधन है।

"और आप जिन बेलों को पानी दे-देकर सींचती रही हैं उनमें आपके इन अधरों से होड़ करने वाली नई कोपलें तो फूट

आई हैं न ? आपके ये होंठ चिरकाल से न रंगे जाने पर भी अरुणाभ ही दिखाई पड़ रहे हैं।

"और ये जो हरिण आपके हाथ में रखी हुई घास को भी प्रेमपूर्वक छीन-छीनकर खा लेते हैं, इनके बीच में रहते हुए आपका मन तो प्रसन्न रहता है न ? क्योंकि हे कमलनयने, तुम्हारे चंचल नयन इन हरिणों के नयनों से बहुत अधिक मिलते-जुलते है।

"और हे पार्वती, यह जो कहा जाता है कि सुन्दर रूप पाप कर्म की ओर प्रवृत्त नहीं होता, वह ठीक ही है; क्योंकि हे सुन्दरि, तुम्हारा सदाचरण बड़े-बड़े तपस्वियों के लिये भी आदर्श बन गया है।

"यह हिमालय न तो सप्तर्षियों द्वारा बिखेरे गये पूजा के पुष्पों से और न स्वर्ग से उतरे हुए गंगाजल से ही उतना पवित्र हुआ है, जितना यह अपने वंश समेत तुम्हारे निष्कलंक आचरणों द्वारा पवित्र हुआ है।

"हे सुन्दरि ! धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग में से अब मुझे धर्म ही सब से अधिक महत्वपूर्ण लगने लगा है। क्योंकि तुम सरीखी तपस्विनी अर्थ और काम की ओर से अपने मन को मोड़कर एकमात्र धर्म की ही सेवा में लगी हुई है।

"तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया है। अब तुम मुझे अपने से पराया न समझो, क्योंकि हे नतांगि, यह कहा जाता है कि विद्वानों की मित्रता केवल सात शब्दों के आदान-प्रदान से ही हो जाती है।

"इसलिये मैं ब्राह्मण जाति की सुलभ चपलता के कारण आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। हे तपस्विनी, आप अत्यन्त क्षमाशील हैं और यदि कुछ रहस्य न हो तो आप मेरी बात का उत्तर अवश्य दें।

"आपका जन्म सर्वप्रथम ब्रह्मा के कुल में हुआ है। आपका शरीर त्रिलोकी के सौन्दर्य से निर्मित प्रतीत होता है। मनचाहे ऐश्वर्य का आनन्द आपको प्राप्त है। आपका यह नया उठता हुआ यौवन अनुपम है। अब यह तो बताइये कि आप इससे अधिक और किस फल की कामना से तप कर रही हैं ?

"कभी-कभी मनस्विनी ललनाएँ किसी भयंकर अनभीष्ट घटना को रोकने के लिये भी इस प्रकार की तपस्या की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं। परन्तु मैं जब इस दिशा में विचार करता हूँ तो मुझे ऐसा भी कोई कारण सूझ नहीं पड़ता।

"हे सुन्दर भौहों वाली पार्वती, तुम्हारा रूप ही ऐसा है कि न तो कोई तुम्हें दुःख ही दे सकता है और न तुम्हारा अपमान ही कर सकता है। फिर पिता के घर में रहते हुए तो तुम्हारा तिरस्कार कर ही कौन सकता है ? न तुमसे कोई अनुचित रूप से छेड़-छाड़ ही कर सकता है, क्योंकि इतना साहस किसमें है जो विषधर साँप की मणि को लेने के लिये हाथ बढ़ाये।

"फिर तुमने इस नये यौवन में ही आभूषणों को त्याग कर यह वल्कल वस्त्र क्यों पहन लिया है, जो वृद्धों को ही शोभा देता है ? भला कहीं चन्द्रमा और तारों से भरी हुई रात्रि प्रारम्भ में ही सूर्य के सारथि अरुण की ओर जाया करती है?

"यदि तुम्हें स्वर्ग जाने की इच्छा है, तो भी तुम यह तपस्या का श्रम व्यर्थ ही कर रही हो, क्योंकि तुम्हारे पिता का देश ही देवताओं का निवासस्थान स्वर्ग है और यदि तुम यह तपस्या पति पाने की कामना से कर रही हो तो भी यह व्यर्थ है। क्योंकि रत्न किसी ग्राहक को नहीं ढूँढ़ता फिरता, बल्कि रत्न को स्वयं ही ढूँढ़ा जाता है।

"तुमने जो यह लम्बी गहरी साँस छोड़ी है, उसने तुम्हारे मन की बात प्रकट कर दी है। परन्तु मेरे मन मे एक सन्देह उत्पन्न यह हो रहा है कि मुझे तो ऐसा कोई व्यक्ति दिखाई नही पड़ता जिसकी तुम कामना करो। और तुम्हारे चाहने पर भी वह तुम्हें प्राप्त न हो!

"तुम्हारा प्रियतम युवक कोई बहुत ही पाषाण-हृदय है, जो यह देखकर भी कि तुम्हारे कानों में बहुत दिनों से कमल नही सजे हैं और तुम्हारे कपोलों के निकट धान की बालों के समान भूरे रंग वाली ढीली ढाली जटाएँ लटक रही हैं, तुम्हारी उपेक्षा किये जा रहा है।

"तुम्हारा शरीर तपस्या करते-करते अत्यन्त कृश हो गया है। जिस देह पर आभूषण धारण किये जाने उचित थे वह सूर्य की किरणों से झुलस गई है, तुम्हारी दशा वैसी ही हो गई है, जैसी दिन के समय शशिकला की होती है। इस दशा को देखकर किस सहृदय व्यक्ति का मन दुःखी न हो उठेगा?

"तुम्हारा प्रिय व्यक्ति कोई व्यर्थ ही अपने सौन्दर्य के मिथ्या घमंड में भूला हुआ प्रतीत होता है। अन्यथा अब तक

तो उसे आकर अपने मुख को तुम्हारी इन तिरछी पलकों वाले और प्रिय दृष्टि वाले नयनों का लक्ष्य बनाना चाहिये था।"

"हे पार्वती, तुम और कब तक इस प्रकार तपस्या का कष्ट सहती रहोगी ? मेरा भी बहुत सारा संचित किया हुआ तप विद्यमान है। उसका आधा भाग तुम ले लो और उसके द्वारा अपने अभीष्ट वर को प्राप्त करो। परन्तु मैं यह अवश्य जानना चाहता हूँ कि आखिर वह है कौन ?"

जब ब्राह्मण ने पार्वती से ये बातें पूछीं, जो पार्वती के मन में थीं, तो वह अपनी मनोकामना को स्वयं किसी प्रकार न कह सकी। इसलिये उसने अपनी अंजन रहित आँखों को घुमा कर पास बैठी हुई सखी की ओर देखा।

पार्वती की सखी उस ब्रह्मचारी से कहने लगी, "भद्र यदि आपको कुतूहल ही है तो मैं आपको बताती हूँ कि क्यों इन्होंने अपने इस सुकोमल शरीर को इस तपस्या में लगा दिया है। यह ऐसा ही है, जैसे कोई तेज धूप से बचने के लिये कमल की पंखुरियों की छतरी लगा ले।

"यह मानिनी महेन्द्र इत्यादि अत्यन्त समृद्धशाली चारों दिग्पालों को छोड़ कर महादेव को पति रूप में प्राप्त करना चाहती हैं, जिन्हें अब कामदेव के नष्ट हो जाने के कारण अपने सौन्दर्य द्वारा मुग्ध नहीं किया जा सकता।

"कामदेव ने शिव के ऊपर जो बाण चलाया था वह शिव की भयंकर हुंकार को सुनकर ही वापस लौट पड़ा और शिव तक पहुँचा ही नहीं। परन्तु कामदेव के जल मरने के बाद भी

उसके उस बाण ने हमारी इस सखी के हृदय में बहुत बड़ा घाव कर दिया।

"उसके बाद से ही यह पार्वती प्रेम में इतनी व्याकुल हो गई कि माथे पर चन्दन तिलक लगाते-लगाते इसके बाल मटमैले हो जाते। और यह बर्फ की शिलाओं पर पड़ी रहती, फिर भी इन्हें किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता था।

"जब कभी यह अपने वाष्प गद्‌गद कंठ से महादेव के गुणों के गीत गाने लगती, तो वे ऐसे हृदयद्रावक होते थे कि अनेक बार इनकी वन संगीत की सखियां, किन्नर राजकुमारियाँ भी रोने लगती थीं।

"कई बार एक पहर रात शेष रहे ही यह एकाएक आँखें मींचे मींचे ही जाग उठती और 'हे नीलकंठ, कहां जाते हो?' कह कर किसी अदृश्य व्यक्ति को सम्बोधन करती हुई उसके मिथ्या कंठ में अपनी बाहें डालने का प्रयत्न करने लगती थी।

"कई बार एकान्त में बैठ कर यह महादेव का चित्र बनाती और फिर बड़े भोलेपन से उसे उलाहना दिया करती कि 'विद्वान लोग तो तुम्हें सर्वान्तर्यामी बताते हैं, फिर तुम्हें मेरे मन का भाव पता क्यों नहीं चलता?'

"और जब अनेक प्रकार से सोच-विचार करने पर भी उन विश्व के स्वामी महादेव को प्राप्त करने का कोई उपाय इन्हें सूझ न पड़ा तो, यह अपने पिता से अनुमति लेकर हमारे साथ तप करने के लिये इस तपोवन में आ गई।

"इन्होंने इस तपोवन मे जिन वृक्षों को स्वयं आकर लगाया था, वे इनके तप के साक्षी बन कर बढ़ते-बढ़ते फूलने और फलने लग गये हैं, परन्तु अभी तक महादेव को प्राप्त करने की इनकी कामना के अंकुर भी फूटे दिखाई नही पड़ते।

"तप के कारण ये दिनों-दिन दुर्बल हुई जाती है, जिसे देख-देख कर हम सखियों की आँखों में आँसू भरे रहते है। हमारी सखी के अभीष्ट किन्तु दुर्लभ महादेव न जाने कब इन पर उसी प्रकार कृपा वृष्टि करेंगे, जैसे इन्द्र जल के अभाव मे तरस रही जलती हुई पृथ्वी पर जल बरसा कर उसे तृप्त कर देते है।"

इस प्रकार पार्वती के मन की बात जानने वाली सखी ने उस ब्रह्मचारी को पार्वती के तप का प्रयोजन ठीक-ठीक बतला दिया, जो अपने व्रत पालन के कारण अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड रहा था। सुन कर ब्रह्मचारी ने प्रसन्नता का कुछ भी चिन्ह व्यक्त नही किया, केवल इतना पूछा: "क्यों जी यह सच कह रही है, या परिहास कर रही हैं ?"

पार्वती ने अपनी स्फटिक के मनकों से बनी माला अपनी मुट्ठी में ले ली और कुछ देर तक विचार कर चुकने के उपरान्त जैसे-तैसे उन्होंने केवल ये थोड़े से नपे-तुले शब्द कहे।

"हे वेदज्ञानियों मे श्रेष्ठ, आपने जो सुना वह ठीक ही है। यह तपस्विनी इतने ही ऊँचे पद को पाने की अभिलाषिणी है। यह तप उन्ही को प्राप्त करने के लिये है। मनुष्य का मनोरथ जहां न पहुँच सके, ऐसा तो कोई स्थान ही नही।"

तब ब्रह्मचारी कहने लगा : "महादेव के विषय में तो सब कोई जानते हैं। फिर भी उनको पाने की इच्छा से आप ऐसा तप कर रही हैं ? महादेव के अशुभ कार्यों का विचार करके मेरा तो मन आपकी इस इच्छा का समर्थन करने को नहीं होता।

"आप भी किस निकम्मे से प्रेम करने चलीं ? सोचिये तो कि विवाह के समय मंगल सूत्र से सजा हुआ आपका यह हाथ महादेव के उस हाथ पर रखा हुआ कैसा लगेगा जिसमें कंकणों के स्थान पर सांप लिपटे हुए हैं ?

"आप ही ज़रा सोचिये कि सुन्दर हंसों से चित्रित नववधू के दुपट्टे तथा रक्त चुआती हुई हाथी की खाल, इन दोनों का मेल होना क्या भला प्रतीत होता है ?

"अब तक आप अपने जिन महावर से रंगे चरणों से फूलों से भरे आंगनों में चलती रही हैं, उन्हीं से आपको अब उन श्मशान भूमियों में चलना पड़े, जिनमें शवों के बाल बिखरे पड़े होते हैं; यह तो आपका कोई शत्रु भी आपके लिये न चाहेगा।

"और यदि आपको महादेव सरलता से प्राप्त भी हो जायँ तो भी इससे बढ़कर और बुरी बात क्या होगी कि आपके इस स्तन युगल पर, जिस पर अब हरिचंदन पुता हुआ है, महादेव के शरीर पर लगी हुई चिता भस्म आकर पुत जाय ?

"इससे भी अधिक एक और विडम्बना यह होगी कि आप जो अब तक श्रेष्ठ हाथी पर चढ़ती रही हैं, विवाह होने के

उपरान्त महादेव के साथ जब बूढ़े बैल पर चढ़ कर निकलेंगी, तब नगर के प्रतिष्ठित लोग आपको देख कर हँसने लगेंगे।

"महादेव को प्राप्त करने की इच्छा के अब कारण दो किस्मतें फूट गई हैं। एक तो चन्द्रमा की कला जो उनके मस्तक पर विद्यमान है और दूसरी आप जो संसार की आँखों के लिये शान्ति पहुँचाने वाली चाँदनी के समान हैं।

"महादेव के शारीरिक-सौन्दर्य का यह हाल है कि उसकी तीन आँखें हैं। उसके कुल का कुछ पता नहीं; और धन-सम्पत्ति इतने से ही स्पष्ट है कि वह दिगम्बर रहता है। हे मृगनयनी, बरों में जो जो बाते देखी जाती है, उनमें से महादेव में तो एक भी नहीं है।

"तुम अपने मन को इस अशुभ कामना से वापिस फेर लो। कहाँ तो उस ढंग के महादेव और कहाँ शुभ लक्षणों वाली तुम ! साधुजन यज्ञ में खंभा बनाने के लिये श्मशान में गड़ी हुई सूली को प्रयोग में नहीं लाते।"

जब उस ब्रह्मचारी ने महादेव के विरुद्ध ऐसी बातें कही, तो पार्वती के होंठ क्रोध से कांपने लगे; उसकी भौहें टेढ़ी हो गई और उनकी आँखों में लाली झलक आई।

वह उससे कहने लगी, "तुम महादेव के वास्तविक रूप को जानते नहीं हो, इसीसे तुमने मुझ से ये बातें कहीं है। मन्दबुद्धि लोग असाधारण महात्माओं के चरित्र से अकारण ही द्वेष किया करते हैं।

"मांगलिक पदार्थों का प्रयोग या तो किसी विपत्ति का

प्रतिकार करने के लिये किया जाता है अथवा किसी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये। परन्तु जो महादेव सम्पूर्ण संसार को शरण देने वाले हैं, जिन्हें कोई कामना शेष नही है, उन्हें इन के प्रयोग की क्या आवश्यकता है, जिनसे आशा बान्धने के कारण आत्मवृत्ति को चोट पहुँचती है?

"महादेव अकिंचन होते हुए भी सारी सम्पत्ति को उत्पन्न करने वाले है। वे श्मशानवासी होते हुए भी त्रिलोकी के स्वामी है। वे भयकर रूप वाले होने पर भी शिव कहलाते है। उनके वास्तविक रूप को पहचानने वाला संसार मे कोई है ही नही।

"और फिर सारा संसार ही महादेव की मूर्ति है। उनमें यह नही देखा जाता कि वह आभूषणों से चमक रहे हैं या उन पर साँप लिपटे हुए है; उन्होने दुकूल धारण किया है या गजचर्म ओढ़ा हुआ है; या उन्होंने मुँडमाला पहनी है अथवा वह चन्द्रकला से सुशोभित हैं।

"चिता की भस्म उनके शरीर का स्पर्श करके रजोगुण को शुद्ध करने का साधन बन जाती है। इसीलिये तांडव नृत्य का अभिनय करते समय उनके देह से झड़ कर गिरी हुई चिता-भस्म को देवता लोग अपने माथे पर लगाते हैं।

"यद्यपि महादेव सम्पत्तिहीन हैं, फिर भी जब वे अपने बैल पर चढ़ कर जाते है तो मद बहाते हुए दिग्गजों पर चढ़ा हुआ इन्द्र उनके बैल के साथ-साथ चलता हुआ उनके पैरों के पास जाकर अपने सिर से उनके पैरों की अंगुलियों को खिले

हुए मंदार पुष्पों के पराग से रंग कर लाल किया करता है।

"अपने नीच स्वभाव के कारण तुमने महादेव के दोष गिनाते हुए भी एक बात ठीक कह दी है कि उनके कुल का पता नहीं है। क्योंकि जिसे स्वयंभू ब्रह्मा को भी उत्पन्न करने वाला कहा जाता है, उनके कुल और वंश का पता ही क्या चल सकता है?

"अच्छा, इस विवाद को समाप्त करो। जैसा तुमने सुना है, मान लिया कि वह बिल्कुल वैसे ही हैं; परन्तु मेरा मन तो उन्हीं में रमा हुआ है। और प्रेम दोषों को नहीं देखा करता।

"सखि, देखो यह ब्रह्मचारी फिर कुछ बोलना चाहता है। इसके होंठ हिल रहे हैं। इसे चुप रहने को कहो। क्योंकि जो बड़ों की निन्दा करता है, केवल उसी को पाप नहीं लगता, बल्कि जो सुनता है; उसे भी पाप लगता है।

"या फिर मैं ही यहाँ से चली जाती हूँ।" इतना कह कर पार्वती चल पड़ी और हड़बड़ाहट में उसका स्तनों को ढंकने वाला वल्कल वस्त्र फट गया। तभी महादेव ने अपना वास्तविक रूप धारण करके मुस्कराते हुए पार्वती का हाथ पकड़ लिया।

महादेव को देख कर पार्वती का शरीर काँपने लगा। उनके सारे शरीर से पसीना छूटने लगा। चलने के लिये वह अपना एक पैर उठाये हुए थीं, परन्तु जैसे नदी के रास्ते में कोई पर्वत आ पड़े तो वह न आगे बढ़ पाती है और न वापस लौट पाती है, उसी प्रकार पर्वतराज की कन्या भी न

तो चल ही सकी और न खड़ी ही रह सकी।

महादेव कहने लगे: "हे सुन्दरि, मैं आज से तुम्हारा दास हूँ। तुमने अपनी तपस्या से मुझे खरीद-सा लिया है।" यह सुनते ही पार्वती का नियमपालन का सारा कष्ट जाता रहा। क्योंकि यदि अभीष्ट फल की प्राप्ति हो जाय तो क्लेश के स्थान पर फिर नई ताजगी आजाती है।

छठा सर्ग

इसके पश्चात् पार्वती ने अपनी सखी द्वारा विश्वरूप महादेव से यह कहलवाया कि मेरा दान मेरे पिता पर्वतराज ही कर सकते हैं। आप उन्हें और मना लीजिये।

सखी के द्वारा सन्देश कहलवाकर पार्वती अपने प्रिय महादेव के प्रेम में उसी प्रकार मग्न हो गई, जैसे आम्रवृक्ष की डाल कोयल के द्वारा वसन्त के पास सन्देश भिजवाकर खिल उठती है।

महादेव ने इस बात को स्वीकारकर लिया और जैसे-तैसे उन्होंने पार्वती को विदा दी। उसके पश्चात् उन्होंने सातों ज्योतिर्मय ऋषियों को स्मरण किया।

वे सप्तर्षि अपने प्रभामंडल से आकाश को देदीप्यमान करते हुए अरुन्धती समेत अविलम्ब ही महादेव के सम्मुख आकर प्रकट हुए।

उन सप्तर्षियों ने उस आकाश गंगा के जल में स्नान किया था, जिसके किनारे पर खड़े हुए मन्दार वृक्षों के पुष्प गिर-गिरकर उसकी तरंगों में बहते रहते हैं और जिसका जल दिग्गजों के मद की सुगंध से सुवासित रहता है।

उन ऋषियों ने मोतियों के यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे और सुनहले वल्कल वस्त्र पहने थे। उनके पास रत्नों से

बनी रुद्राक्ष की मालाएँ थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो कल्पवृक्षों ने ही सन्यास ले लिया हो।

सूर्य भी जब इन सप्तर्षियों के पास से गुजरता है तो वह अपने घोड़ों को नीचे ही खड़ा कर देता है। फिर अपने रथ की ध्वजा उतारकर विनयपूर्वक ऊपर की ओर देखता हुआ इन ऋषियों को प्रणाम किया करता है।

सप्तर्षि प्रलयकाल में भी महावाराह द्वारा उबार कर अपने दांतों पर रखी हुई पृथ्वी के साथ-साथ महावराह के दांतों पर ही विश्राम किया करते है।

ब्रह्मा के उपरान्त शेष संसार का निर्माण इन्हीं सप्तर्षियों ने किया था। इसीलिए पुराविद् लोग इन्हें प्राचीन विधाता कहा करते हैं।

ये सप्तर्षि अपने पूर्वजन्म में किये पुण्यकर्मों का और तप के फल का उपभोग कर रहे हैं। फिर भी इस समय भी तपस्या में लगे रहते हैं।

उनके बीच साध्वी अरुन्धती पति के चरणों की ओर आँखें लगाये ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानो साक्षात् तपस्या की सिद्धि ही हो।

महादेव ने उन सबको बिना किसी भेद-भाव के एक ही दृष्टि से देखा, क्योंकि महात्मा पुरुष स्त्री और पुरुष का बहुत भेद नही करते। वे तो उनके चरित्र को ही महत्व देते है।

अरुन्धती को देखकर महादेव का विवाह के प्रति आग्रह और भी बढ़ गया, क्योंकि सब धार्मिक क्रियाओं

का मूल कारण अच्छी पत्नियां ही होती हैं।

यद्यपि इस समय पार्वती के प्रति महादेव के मन में अनुराग धर्म ने उत्पन्न किया था, फिर भी पहले के अपराध से भयभीत कामदेव का मन सिहर उठा।

वे सब मुनि महादेव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के पश्चात् प्रेम से पुलकित होकर महादेव से बोले :

"हे महादेव, हमने आज तक जो भी कुछ अध्ययन किया; जो यज्ञ इत्यादि किये और जो तपस्या की, उस सब का फल आज हमें मिल गया है। क्योंकि आप इस संसार के स्वामी हैं और किसी की मनोकामना की गति भी आप तक नहीं है। फिर भी आपने कृपा करके आज हमें अपने मन में स्थान दिया है।

"आप जिसके चित्त में विद्यमान हों, वही व्यक्ति सबसे अधिक भाग्यशाली है। फिर उस व्यक्ति के सौभाग्य का तो कहना ही क्या, जिसका आपने स्मरण किया हो !

"यह ठीक है कि हमारा स्थान सूर्य और चन्द्रमा से भी ऊपर है, परन्तु आज आपने हम पर अपने स्मरण द्वारा कृपा करके हमारा पद और भी अधिक ऊँचा कर दिया है।

"आपने हमें स्मरण किया है, इससे हम अपने-आपको बहुत भाग्यवान समझते हैं। क्योंकि यदि उत्तम लोग आदर प्रकट करें, तभी व्यक्ति को अपनी योग्यता का विश्वास होता है।

"हे महादेव, आपके स्मरण करने से हमें कितना आनन्द

हुआ है, यह आपको कहकर बताने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि आप तो सब प्राणियों के हृदय की बात जानते ही हैं।

"यद्यपि हम आपको साक्षात् देख रहे हैं फिर भी आपका वास्तविक रूप हम नहीं जानते। कृपया अपना स्वरूप हमें बतलाइये; क्योंकि आप बुद्धिगम्य तो हैं ही नहीं।

"आपका यह जो रूप हमें दिखाई पड़ रहा है, यह वह रूप है, जिससे आप संसार का सृजन करते हैं, या वह जिससे संसार को धारण करते हैं; अथवा वह रूप है जिससे आप संसार का संहार करते हैं ?

"या हे देव, यह प्रार्थना तो बहुत बड़ी है। इसे अभी रहने दीजिये। पहले यह बतलाइये कि आपने हमें किसलिये स्मरण किया है ? अब हमें क्या करना है ?"

तब महादेव मुस्कराये। उनके दांतों की चमक उनके सिर पर विद्यमान चन्द्रमा की कान्ति से होड़ करने लगी। महादेव सप्तर्षियों से कहने लगे :

"आप लोग तो जानते ही हैं कि मैं कुछ भी कार्य स्वार्थ-प्ररित होकर नहीं करता। मेरी आठों मूर्तियों से भी यही बात स्पष्ट है।

"इस समय शत्रुओं से परास्त हुए देवताओं ने मुझसे सन्तान की याचना की है; ठीक वैसे ही जैसे तृषाकुल चातक बादल से वृष्टि की याचना किया करता है।

"इसलिये मैं सन्तान की उत्पत्ति के लिए पार्वती को अपने

घर लाना चाहता हूँ। जैसे यजमान अग्नि की उत्पत्ति के लिये अरणि अपने घर लाता है।

"मेरी ओर से आप लोग जाकर हिमालय से पार्वती की याचना कीजिये, क्योंकि सज्जनों द्वारा कराये गये सम्बन्धों में बिगाड़ नहीं हुआ करता।

"ऊँचे, प्रतिष्ठित तथा भूमि को धारण करने वाले हिमालय से सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर मैं भी अपने-आपको भाग्यशाली समझूँगा।

"हिमालय से कन्यादान के लिये जाकर क्या कहना होगा, यह आपको बताने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि आपने ही जिस लोकाचार का निर्माण किया है, उसी का तो सब सज्जन पालन किया करते हैं।

"और इस विषय में आर्या अरुन्धती को भी कुछ कार्य करना होगा, क्योंकि प्रायः इस प्रकार के कार्यों में गृहिणियां अधिक कुशल होती हैं।

"अब आप इस कार्य को पूरा करने के लिए हिमालय के ओषधिप्रस्थ नगर को जाइये। फिर यहाँ महाकोशी नदी के प्रपात के निकट ही हम लोग आपस में मिलेंगे।"

जब सप्तर्षियों ने संयमी तपस्वियों में श्रेष्ठ महादेव को विवाह के लिये उद्यत देखा तो उनकी विवाह के कारण उत्पन्न होने वाली लज्जा जाती रही।

वे सप्तर्षि "जैसी आज्ञा" कह कर वहां से चल पड़े और महादेव भी पहले बताये हुए स्थान पर पहुँच गये।

वे सप्तर्षि नीले आकाश में मन के समान तीव्र वेग से उड़ते हुए ओषधिप्रस्थ नामक नगर में पहुँचे ।

यह नगर धन-सम्पत्ति की दृष्टि से अलकापुरी से भी बढ़ा चढ़ा था । ऐसा प्रतीत होता था कि स्वर्ग में न समा सकने वाली अतिरिक्त ऐश्वर्य राशि यहाँ लाकर सजा दी गई है ।

इस नगर के चारों ओर गंगा की धाराएं बह रही थी । नगर के चारों ओर बने परकोटे पर ओषधियां चमकती रहती थीं । वहां के पत्थरों में बड़ी-बड़ी मणियां छिपी हुई थी, जिनसे वह नगर अत्यन्त मनोहर हो उठा था ।

वहां के हाथियों को सिहों से कोई भय नहीं था । वहां सब घोड़े 'बिल' जाति के ही होते थे । वहां के सब नागरिक यक्ष और किन्नर ही थे और वहां की सब स्त्रियाँ वन-देवियां थीं ।

वहां शिखरों पर सदा बादल छाये रहते थे; इसलिये जब घरों में मृदंग इत्यादि वाद्य भी बजते थे, तो पहले-पहल यह भ्रम होता था कि बादल गरज रहे हैं; परन्तु बाद में लय और ताल के कारण पता चल जाता था कि ये बादल नहीं, मृदंग हैं।

इस नगर में यद्यपि नागरिकों ने अपने घरों पर झंडियां नही टांगी थीं, परन्तु कल्पवृक्षों की चंचल शाखाएं ही यहां पर घरों के ऊपर लगी हुई पताकाओं-सी प्रतीत होती थीं ।

इस नगर में स्फटिक से बने हुए महलों में बने मदिरा-लयों में जब रात्रि को तारों के प्रतिबिम्ब चमकते थे, तो वे रत्नजटित हारों जैसे प्रतीत होते थे ।

यहां रात्रि के समय तरह-तरह की ओषधियां चमक कर प्रकाश करती रहती थीं, इसलिये बरसात के दिनों में भी अभिसारिकाओं को रात में अन्धकार का अनुभव नहीं होता था।

यहाँ आयु के अन्त तक यौवन बना रहता था। यहां कामदेव के अतिरिक्त अन्य कोई हत्यारा नहीं था और रमण के उपरान्त आने वाली निद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की मूर्छा नहीं आती थी।

यहां स्त्रियाँ अपनी भौंहें टेढ़ी करके कांपते हुए होंठों से अपनी सुन्दर अँगुलियों से अपने प्रेमी पुरुषों को तब तक धमकाती थी, जब तक वे उन्हें मनाकर प्रसन्न न कर ले। इसके अतिरिक्त यहां और कोई किसी को क्रोध से धमकाता नहीं था।

इस नगर का उपवन गन्धमादन नामक का पर्वत था, जहां पथिक विद्याधर चलते-चलते थक कर कल्पवृक्षों की छाया में सोकर विश्राम किया करते थे।

हिमालय के उस नगर को देखकर उन दिव्य ऋषियों को यह अनुभव हुआ कि स्वर्गप्राप्ति के लिए उन्होंने जो इतना पुण्य किया, उसमें वे ठगे ही गये।

वे सप्तर्षि तेजी से हिमालय के महल में उतरे। द्वारपाल लोग ऊपर की ओर मुँह उठाये उनकी ओर देख रहे थे; और उतरते समय अपनी जटाओं के कारण वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो चित्र में अंकित अग्नि के समान निश्चल हों।

वे सातों ऋषि बड़े-छोटे के क्रम से आकाश से उतरते

हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे जल की लहरों में पड़ते हुए सूर्य के अनेक प्रतिबिम्ब हों।

उन पूजनीय ऋषियों के लिये पूजा की सामग्री लेकर हिमालय ने दूर तक आकर उनका स्वागत किया। उसके चलने से पृथ्वी धसकने-सी लगी।

उसके होंठ गेरू से लाल थे। ऊँचे-ऊँचे देवदारु उसकी विशाल भुजाओं के समान थे और स्वभावतः ही उसकी छाती शिलाओं से बनी हुई थी। देखते ही सप्तर्षियों ने पहचान लिया कि यही हिमालय है।

हिमालय विधिपूर्वक उनका आतिथ्य सत्कार करके स्वयं मार्ग दिखाता हुआ उन पुण्यात्मा ऋषियों को अपने अन्तःपुर में ले गया।

वहाँ पर उन्हें बेंत के आसनों पर बिठाने के पश्चात् स्वयं एक आसन पर बैठकर हिमालय हाथ जोड़कर उनसे कहने लगा :

"आपका दर्शन आज एकाएक हुआ है। मुझे यह ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो बिना बादल के ही वर्षा हो गई हो या बिना फूल के ही फल लग आया हो।

"आपकी कृपा से आज मैं अपने-आपको ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, जैसे कोई मूर्ख एकाएक ज्ञानी बन गया हो या लोहा सोना बन गया हो या मैं एकाएक भूमि से स्वर्ग में पहुँच गया होऊँ।

"आज से मैं सब प्राणियों के लिए आत्मशुद्धि करने का

स्थान बन गया हूँ, क्योंकि जिस स्थान पर महापुरुष निवास करते हों उसी को तीर्थ कहा जाता है।

"हे सप्तर्षियो, मैं अपने-आपको दो वस्तुओं से पवित्र हुआ समझता हूँ। एक तो अपने सिर पर गिरने वाली गंगा की धारा से और दूसरे आपके चरणों को धोने के बाद बचे हुए इस जल से।

"मैं अनुभव करता हूँ कि आपने मेरे शरीर के स्थावर और जंगम दोनों ही रूपों पर विशेष अनुग्रह किया है। क्योंकि मेरे जंगम शरीर को आपने अपना सेवक बना लिया और मेरे स्थावर शरीर पर आपने अपने पवित्र चरण रखे हैं।

"आपकी इस कृपा के कारण मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि मेरे दूर दिशाओं तक फैले हुए अंग भी किसी तरह फूले नहीं समा रहे हैं।

"आप जैसे तेजस्वी महात्माओं के दर्शन से केवल मेरे गुफाओं में भरा अंधकार ही नष्ट नही हो गया, परन्तु मेरे हृदय में विद्यमान रजोगुण से आगे का तमोगुण भी नष्ट हो गया है।

"यह तो मुझे नहीं लगता कि आप किसी कार्य से यहाँ आये हों, क्योंकि यदि कोई कार्य होता भी तो क्या आप स्वयं अपनी शक्ति से ही उसे पूर्ण न कर लेते? मैं तो यह समझता हूँ कि आप केवल मुझे पवित्र करने के लिये ही यहाँ पधारे हैं।

"फिर भी आप मुझे कोई न कोई आज्ञा अवश्य दीजिये, क्योंकि सेवकों पर स्वामी की प्रसन्नता तभी प्रकट

जब उन्हें किसी कार्य में लगाया जाय।

"यह मैं स्वयं खड़ा हूं, ये मेरी पत्नियां हैं और यह हमारे कुल की प्राण मेरी कन्या है। इनमें से जिससे भी आपका कुछ कार्य हो सके, उसका आदेश दीजिये। शेष बाह्य वस्तुओं से आपका कुछ कार्य हो सकता है, इसका मुझे विश्वास नहीं।"

जब हिमालय इतना कह चुका तब गुफाओं में से लौटती हुई उसी की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी और ऐसा प्रतीत हुआ मानो एक ही बात हिमालय ने दो बार कही हो।

तब सप्तर्षियों ने इस प्रकार के वार्तालाप में कुशल अंगिरा ऋषि से अनुरोध किया कि वह हिमालय से बात प्रारम्भ करें। तब अंगिरा बोले :

"हिमालय, तुमने जो कहा, वह सब ठीक है और इससे अधिक भी जो कुछ कहो, वह भी ठीक है। तुम्हारे शिखर और तुम्हारा हृदय दोनों एक समान ही ऊँचे हैं।

"तुम्हें जो स्थावर रूप विष्णु कहा जाता है, वह ठीक ही कहा जाता है। क्योंकि तुमने चर-अचर सब प्राणियों को अपनी गोद में स्थान दिया हुआ है।

"यदि तुम रसातल तक पृथ्वी को सहारा न दिये रहो, तो शेषनाग अपने कमलनाल के समान कोमल फनों से पृथ्वी को किस प्रकार सम्हाल सकता है?

"अटूट निर्मल प्रवाह वाली और समुद्र की लहरों तक बहती चली जाने वाली तुम्हारी नदियाँ सब लोकों को पवित्र करती हैं, और सब जगह तुम्हारी कीर्ति फैलाती हैं।

"जिस प्रकार गंगा का आदर विष्णु के चरण से निकलने के कारण किया जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे ऊँचे शिखरों से निकलने के कारण भी उसका आदर होता है ।

"भूमि, स्वर्ग और पाताल में विष्णु की महिमा तब फैली जब उन्होंने तीन पगों में तीनों लोकों को नापा; परन्तु उतनी महिमा तो तुम्हारी स्वाभाविक रूप से ही फैली हुई है ।

"तुम्हें यज्ञ का भाग पाने वाले देवताओं में स्थान प्राप्त हुआ है, इससे तुमने सुमेरु के ऊँचे और सुनहले शिखरों को भी नीचा दिखा दिया है ।

"तुम्हारी सारी कठोरता तुम्हारे इस स्थावर शरीर में ही केन्द्रित हो गई है, और तुम्हारा यह चल शरीर सज्जनों की आराधना में रत तथा भक्ति के कारण विनम्र है ।

"अच्छा, अब हमारे आने का प्रयोजन सुनो । वस्तुतः तो यह तुम्हारा ही काम है । परन्तु उत्तम सम्मति देने के कारण इसका कुछ यश हमें भी प्राप्त हो जायगा ।

"तुम महादेव को तो जानते ही हो । उन्हें अणिमा इत्यादि सिद्धियाँ प्राप्त हैं । वह समस्त संसार के एक मात्र स्वामी हैं और उनके सिर पर चन्द्रमा की कला विराजती है ।

"उन्होंने पृथ्वी इत्यादि अपनी आठ मूर्तियों द्वारा इस विश्व को धारण किया हुआ है । उनकी ये आठों मूर्तियां एक-दूसरे को परस्पर उसी प्रकार सहारा देती रहती हैं, जिस प्रकार घोड़े मार्ग में मिलकर रथ को खींचा करते हैं ।

"उन्हें योगी अपने शरीर के अन्दर ही विद्यमान पाते हैं

और उन्हें विद्वान् लोगों ने जन्म-मरण से परे बताया है।

"उन समस्त कर्मों के साक्षी इष्ट वर देने वाले महादेव ने हमें भेजकर तुम्हारी कन्या को विवाह के लिये माँगा है।

"जैसे वाणी का सम्बन्ध अर्थ से कर दिया जाता है, उसी प्रकार तुम भी पार्वती का सम्बन्ध महादेव से कर दो; क्योंकि यदि कन्या को अच्छा पति प्राप्त हो जाय, तो पिता को उसके लिये कोई चिन्ता नहीं रहती।

"महादेव समस्त संसार के पिता हैं। उनसे विवाह हो जाने पर तुम्हारी इस कन्या को सब स्थावर और जंगम पदार्थ अपनी माता समझेंगे।

"फिर देवता लोग महादेव को प्रणाम करने के पश्चात् अपने सिर पर धारण की हुई मणियों से इसके चरणों को रंगा करेंगे।

"पार्वती वधू हो, तुम कन्यादान करने वाले बनो, हम विवाह मे मध्यस्थ हों और स्वयं महादेव वर हों, इससे अधिक तुम्हारे कुल के लिये सम्मान की और क्या बात हो सकती है?

"महादेव की सब स्तुति करते हैं। परन्तु वे किसी की स्तुति नहीं करते। सब उन्हीं के आगे मस्तक झुकाते हैं, परन्तु वे किसी के आगे सिर नहीं झुकाते। ऐसे विश्वपति महादेव से अपनी कन्या का विवाह करके तुम उनके भी पूजनीय बन जाओ।"

जब देवर्षि अंगिरा इस प्रकार हिमालय को मना रहे थे,

उस समय पार्वती अपने पिता के पास बैठी थी। वह मुँह नीचा किये अपने हाथ में लिये हुए कमल की पंखुरियाँ गिनने लगी।

यद्यपि यह बात हिमालय के मन की ही थी, फिर भी उसने मेना के मुख की ओर देखा, क्योंकि कन्या के सम्बन्ध में बात चलने पर गृहस्थ लोग प्रायः गृहणियों से ही सम्मति मांगते हैं।

मेना ने भी अपने पति की इच्छा के अनुसार ही अपनी स्वीकृति दी। पतिव्रता स्त्रियां अपने पति की इच्छा के अनुकूल ही कार्य किया करती हैं।

देवर्षि अंगिरा के बोल कर चुप हो जाने पर 'अब क्या उत्तर देना उचित है' यह सोच कर हिमालय ने अपनी मंगल वस्त्रों से सुसज्जित कन्या को बुलाया और कहा।

"बेटी, यहाँ आओ। तुम्हें महादेव ने मुझसे भिक्षा रूप में मांगा है और लेने के लिये ये दिव्य मुनि पधारे हैं। आज मेरा गृहस्थ होना सफल हुआ।"

पुत्री से इतना कह कर हिमालय ने सप्तर्षियों से कहा। "यह महादेव की पत्नी आपको नमस्कार करती है।"

अभीष्ट कार्य की सिद्धि को सूचित करने वाली हिमालय की इस वाणी से सप्तर्षि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पार्वती को ऐसे अनेक आशीर्वाद दिये, जिनका फल तत्काल ही प्राप्त हो।

पार्वती ने आदर के साथ अरुन्धती को नमस्कार किया,

जिससे उसके सोने के कुँडल भूमि पर गिर पड़े। पार्वती अत्यन्त लजा रही थी। अरुन्धती ने उसे अपनी गोदी में बिठा लिया।

पुत्री के स्नेह से विकल होने के कारण उसकी माता मेना की आँखों में आँसू भर आये थे। अरुन्धती ने उसे अनुपम वर महादेव के गुण बता-बताकर प्रसन्न कर दिया।

जब हिमालय ने विवाह की तिथि पूछी तो सप्तर्षियों ने बताया कि आज से तीन दिन बाद विवाह करना उचित होगा और इतना कहकर वे सप्तर्षि, जिनके पास पहने हुए वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य कुछ सामान नहीं था, वहाँ से चल पड़े।

हिमालय से विदा लेकर सप्तर्षि महादेव के पास पहुँचे और वहाँ जाकर निवेदन किया कि जो कार्य आपने हमें सौंपा था, वह पूर्ण हो गया है। फिर महादेव से विदा लेकर वे सप्तर्षि आकाश में चले गये।

महादेव ने हिमालय की कन्या पार्वती से मिलने की उत्सुकता में वे तीन दिन बड़ी कठिनाई से बिताये। जब प्रेम के कारण महादेवजी की यह दशा हो गई तब फिर और ऐसा कौन हो सकता है, जो प्रेम से अधीर न हो उठे ?

सातवाँ सर्ग

इसके बाद चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष की सातवीं शुभ तिथि को हिमालय ने अपने इष्ट बन्धुओं को एकत्र करके अपनी पुत्री का विवाह संस्कार कर दिया।

जब घर में विवाह के माँगलिक कार्य होने लगे, तो सारा नगर हिमालय के प्रति प्रेम होने के कारण एक परिवार के समान होकर उसके अन्तःपुर में आगया और घर के अन्दर स्त्रियाँ दल बाँधकर आवश्यक कार्यों में जुट गईं।

नगर के मार्गों पर कल्पवृक्ष के फूल बिछा दिये गये और चीनी रेशम के वस्त्रों से झंडियों की मालाएं बनाकर टांग दीं गईं। जगह-जगह स्वर्ण से बन्दनवार बनाये गये, जो खूब चमक रहे थे। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो स्वर्ग ही उठ कर यहाँ आ गया है।

यद्यपि हिमालय के अनेक पुत्र थे, फिर भी वह अकेली कन्या उमा विवाह का समय निकट आ जाने से माता-पिता को ऐसी प्यारी लगने लगी, मानो बहुत समय बाद उसे देखा हो या जैसे वह मर कर फिर जी उठी हो।

पार्वती को सभी सम्बन्धियों ने बारी-बारी से अपनी गोदी में लिया। उसे अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिये और एक से एक बढ़-चढ़ कर आभूषण उसे प्रदान किये। यद्यपि उसके

सम्बन्धी अनेक थे, फिर भी ऐसा प्रतीत हुआ जैसे हिमालय के सारे कुटुम्ब का स्नेह पार्वती में एक जगह आकर केन्द्रित हो गया हो ।

सूर्योदय से तीन मुहूर्त बाद, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर सौभाग्यवती और पुत्रवती स्त्रियों ने पार्वती का शृंगार करना प्रारम्भ किया ।

पहले उसका दूब के अंकुरों तथा सरसों के दानों से शृंगार किया गया और फिर उसे नाभि तक ऊँची रेशमी साड़ी पहनाई गई और उसमें एक बाण खोंस दिया गया और इस प्रकार तेल इत्यादि लगाने का शृंगार पूर्ण हो गया ।

विवाह की विधि के समय लगाये गये उस बाण से पार्वती की शोभा ऐसी बढ़ गयी, जैसे शुक्ल पक्ष में सूर्य की किरणों का स्पर्श पाकर चन्द्रकला दमकने लगती है ।

इसके पश्चात् स्त्रियों ने लोध्र के चूर्ण से उसके शरीर पर लगा हुआ तेल हटाया और कुछ गीला लेप लगा कर उसके शरीर को रंगा । फिर स्नान के योग्य वस्त्र पहना कर उसे स्नानघर में ले गईं,

वहाँ उन्होंने उसे मरकत की शिला पर बिठाया, जिसके चारों ओर मोतियों की रंग-बिरंगी मालाएं टंगी हुइ थीं और फिर उन्होंने गीत गाते हुए पार्वती के ऊपर सोने के कलशों से उडेल-उडेल कर उसे स्नान कराया । इसी समय बाजे बजने लगे ।

मंगल स्नान के उपरान्त पार्वती का शरीर अत्यन्त निर्मल

हो उठा। उन्होंने पार्वती को विवाह के वस्त्र पहनाये और वह ऐसी स्वच्छ दिखाई देने लगी, जैसे बादलों द्वारा स्नान कराये जा चुकने के बाद खिले हुए काश के फूलों से भरी हुई पृथ्वी सुशोभित होती है।

तब पतिव्रता स्त्रियाँ पार्वती का हाथ पकड़ कर उसे मंगल वेदी पर ले गई, जिसके ऊपर चंदोवा तना हुआ था और जिसके चारों ओर चार मणियों से बने हुए खंभे लगे थे। वेदी के ऊपर एक आसन बिछा हुआ था।

वहाँ उन्होंने पार्वती को पूर्व की ओर मुँह करके बिठा दिया और उसका शृंगार करने की तैयारी की। यद्यपि शृंगार की सब सामग्री सामने रखी थी, फिर भी पार्वती का सौन्दर्य ऐसा था कि वे कुछ देर एक टक उसे ही देखती रह गईं और इस प्रकार कुछ विलम्ब हो गया।

फिर किसी ने धूप जला कर उसकी गर्मी से उसके बाल सुखाये, किसी ने उसमें फूल गूँथ दिये और किसी ने पीले महुए की माला से उसका जूड़ा बांध दिया।

उसके बाद उसके शरीर पर सफेद अगर लगा कर ऊपर से गोरोचन से उस पर फूल पत्ते चित्रित कर दिये, जिससे पार्वती की शोभा उस गंगा से भी अधिक हो गई, जिसके किनारे बालू में चक्रवाकों के दल खेल रहे हों।

सजे हुए बालों से युक्त उसके मुख की शोभा ऐसी मनोरम हो उठी कि उसके सामने भ्रमरों से युक्त कमल और मेघ पटल से युक्त चन्द्रमा का बिम्ब भी तुच्छ दिखाई पड़ने

लगा। इन दोनों के साथ उसके मुख की समानता की बात ही समाप्त हो गई।

लोध्र का चूर्ण लगा होने के कारण रूखे और गोरोचन के लेप के कारण अत्यन्त गोरे कपोलों के ऊपरी भाग तक झूलते हुए उसके कानों पर रखे हुए जौ के अंकुर आँखों को बान्ध से थे।

पार्वती का शरीर बहुत ही सुडौल था। उनके ऊपर और नीचे के ओठों के बीच विभक्त करने वाली एक रेखा सी दिखाई पड़ रही थी। पराग से रंगे होने के कारण उसके होंठों की लाली और भी अधिक हो गई थी। जब वे होंठ फड़कते थे, तो उनकी शोभा विचित्र ही होती थी। अब इन ओठों को अपने सौन्दर्य का फल शीघ्र ही प्राप्त होने वाला था।

एक सखी ने पार्वती के चरणों को रंगने के बाद परिहास करते हुए उसे आशीर्वाद दिया कि 'तुम अपने इस चरण से अपने पति के सिर पर विद्यमान चन्द्र कला का स्पर्श करो।' सुन कर पार्वती ने मुँह से बिना कुछ कहे, उसे एक फूलों की माला उठा कर मार दी।

पार्वती के नयन बड़े-बड़े कमल की पंखुरियों के समान थे। शृंगार करने वाली स्त्रियों ने उन नयनों को देख कर उनमें काला अंजन लगा दिया; इसलिये नहीं कि उससे आँखों का सौन्दर्य कुछ बढ़ना था, बल्कि केवल इसलिये कि यह भी एक मांगलिक कार्य था।

ज्यों-ज्यों पार्वती को आभरण पहनाये जाने लगे, त्यों-त्यों

उसकी शोभा उसी प्रकार बढ़ने लगी, जैसे नये निकलते हुए फूलों से लता की अथवा नये उगते हुए तारों से रात्रि की, अथवा उड़-उड़ कर आते पक्षियों से नदी की शोभा बढ़ जाती है।

उसके बाद पार्वती ने दर्पण में अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देखा और देख कर उसके विशाल नयन आनन्द से चमक उठे। वह महादेव के समीप पहुँचने को अधीर हो उठी, क्योंकि स्त्रियों के वेश की सफलता इसी में है कि उसे देख कर उनका प्रिय आनन्दित हो।

इसके पश्चात् उसकी माता ने पार्वती के मुख को ऊपर उठाया, जिसके दोनों ओर कानों में कर्णफूल लटक रहे थे और अपनी दो अंगुलियों से गीले हरताल और मनसिल से अपनी पुत्री के माथे पर विवाह का तिलक लगा दिया। यह तिलक मानो मेना का अपना मनोरथ था जो पहले-पहल उस दिन उत्पन्न हुआ था, जिस दिन उमा के स्तन उभरने आरम्भ हुए थे और उसके पश्चात् जो दिनों-दिन बढ़ता ही गया था।

मेना की आँखों में आँसू भर आये, जिससे उसे दीखना बन्द हो गया और उसने ऊन का बना हुआ मंगल सूत्र उमा की बाँह में कहीं का कहीं बांध दिया, जिसे धाय ने अपनी उंगलियों से सरकाकर ठीक कर स्थान पर कर दिया।

उसके बाद पार्वती नये रेशम के वस्त्र पहने, दर्पण हाथ में लिये ऐसी प्रतीत होने लगी मानो फेनपुंज से ढकी हुई क्षीर-

सागर की तरंग हो या पूर्णचन्द्र से सुशोभित शरद्ऋतु की रात हो।

इसके पश्चात् उसकी लोकाचार में कुशलमाता ने कुल देवताओं की पूजा करके अपने कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली पार्वती से कुल देवताओं को नमस्कार करवाया और फिर बारी-बारी से पार्वती द्वारा सती स्त्रियों के पैर छुवाये।

उन्होंने सिर झुकाये खड़ी पार्वती को यह आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हें अपने पति का अखंड प्रेम प्राप्त हो'। परन्तु बाद में उस पार्वती ने तो अपने पति के आधे शरीर पर ही अधिकार कर लिया और इस प्रकार इष्ट बन्धुओं के आशीर्वाद से भी आगे बढ़ गई।

हिमालय ने अपनी इच्छा और अपनी सामर्थ्य के अनुसार सारे करने योग्य काम पूरे कर दिये और उसके बाद अपने मित्रों से भरी हुई सभा में आकर महादेव के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

उसी समय कुबेर के पर्वत कैलास पर सातों माताओं ने महादेव के सम्मुख वह सारी प्रसाधन सामग्री ला रखी, जो महादेव के पहले विवाह के समय प्रयुक्त की गई थी।

महादेव ने माताओं का आदर करने के लिये उस प्रसाधन सामग्री को केवल छू भर दिया; वैसे तो केवल उनकी इच्छा भर से ही उनका स्वाभाविक वेश ही विवाह के योग्य वेश में परिवर्तित हो गया।

चिता की भस्म ही सफेद अंगराज बन गई, कपाल ही

सिर का सुन्दर आभूषण बन गया और गजचर्म ही सुन्दर दुशाला बन गया, जिसके किनारों पर सुन्दर चित्र बने हुए थे।

उनके मस्तक का चमकीला तीसरा नेत्र जिसमें दीप्त पीले रंग की पुतली दिखाई पड़ा करती थी, इस विवाह के अवसर पर हरताल से लगाया गया पीला तिलक बन गया।

महादेव के शरीर पर जहां-जहां साँप लिपटे हुए थे, वे सब उसी स्थान पर धारण किये जाने वाले आभरण बन गये। परन्तु उनका केवल शरीर ही परिवर्तित हुआ, उनके फनों पर विद्यमान रत्नों की चमक जैसी की तैसी बनी रही।

महादेव के सिर पर चन्द्रमा की कला विद्यमान ही थी, जिससे दिन में भी चमकीली किरणें निकलती थीं और छोटी होने के कारण चन्द्रमा का कलंक उसमें दिखाई नही पड़ता था। इसलिये महादेव को किसी अन्य चूड़ामणि की आवश्यकता ही न हुई।

इस प्रकार समस्त संसार के रंग मंच का निर्माण करने वाले महादेव ने, जो सदा कुछ न कुछ अद्भुत कार्य किया करते हैं, अपने प्रभाव से अपना रूप परिवर्तन करने के पश्चात् पास खड़े हुए गण से तलवार लेकर उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखा।

फिर नन्दी की बांह का सहारा लेकर वे अपने बैल पर चढ़ गये, जिसकी पीठ पर चीते की खाल बिछी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो शिव की भक्ति के कारण कैलास ने ही

अपने विशाल शरीर को संक्षिप्त करके बैल का रूप धारण कर लिया है।

उनके पीछे-पीछे सातों माताएं रथों पर बैठी हुई चल रही थी। रथों के हिलने से उनके कानों के आभूषण हिल रहे थे। उनके मुख प्रभामण्डल के कारण अत्यधिक गौर हो उठे थे। उन माताओं के मुखों से अन्तरिक्ष पद्मों से भरे सरोवर की भांति सुशोभित हो उठा।

उन माताओं के, जिनकी आभा स्वर्ण के समान थी, पीछे कपालों के आभूषण पहने काली चल रही थी, जो बगुलों की पंक्ति से घिरी हुई तथा बिजली चमकाती हुई काली घटा के समान दिखाई पड़ रही थी। इसके पश्चात् महादेव के आगे चलने वाले गणों ने मंगल वाद्य बजाये। वह वाद्यों की ध्वनि जाकर देवताओं के विमानों पर बने नुकीले शिखरों से टकराई और उसने देवताओं को सूचना दे दी कि इस समय महादेव की सेवा में उपस्थित होने का अवसर आ पहुँचा है।

सहस्र किरणों वाले सूर्य ने विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ नया छत्र उठाकर महादेव के सिर पर तान लिया। उस छत्र का श्वेत वस्त्र महादेव के सिर के पास तक पहुँच कर ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो उनके सिर पर गंगा की धारा गिर रही हो।

गंगा और यमुना ने शरीर धारण करके महादेव पर चँवर डुलाना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि उन्होंने अपना नदी रूप त्याग दिया था; फिर भी चँवरों के कारण वे ऐसी प्रतीत

हो रही थीं, मानो हँस उड़-उड़ कर उनके निकट आ रहे हों।

सृष्टि के विधाता ब्रह्मा और लक्ष्मीपति विष्णु महादेव के पास पहुँचे और उन्होंने महादेव की जय बोल कर उनका गौरव बढ़ाया, जैसे आहुति से अग्नि और तीव्र हो उठती है।

एक ही मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीनों रूपों में विभक्त हुई है। ये तीनों ही मूर्तियाँ समय-समय पर एक दूसरे से कम या अधिक होती रहती हैं। कभी महादेव विष्णु से बड़े हो जाते हैं और कभी विष्णु महादेव से। कभी ब्रह्मा इन दोनों से बड़े हो जाते हैं और कभी ये दोनों ब्रह्मा से बढ़ जाते हैं।

इन्द्र तथा लोकपालों ने अपने राजसी वेश त्याग दिये और विनीत वेश धारण करके वे महादेव के निकट पहुँचे। वहाँ नन्दी ने उन्हें महादेव के पास जाने का संकेत किया और नन्दी द्वारा बताये गये मार्ग से चलकर महादेव के पास पहुँच कर उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

महादेव ने ब्रह्मा का स्वागत सिर हिलाकर और विष्णु का स्वागत वाणी से अभिवादन करके और इन्द्र का स्वागत मुस्कराहट द्वारा किया, और अन्य देवताओं का स्वागत उन्होंने उन पर केवल एक कृपा भरी दृष्टि डाल कर ही कर दिया। इस प्रकार महादेव ने सब देवताओं का उनके गौरव के अनुसार उचित अभिनन्दन किया।

जब सप्तर्षियों ने सम्मुख आकर उन्हें विजय का आशीर्वाद दिया, तो महादेव ने मुस्कराते हुए उनसे कहा : "मैंने

इस विवाह के यज्ञ में पुरोहित के कार्य के लिये आप लोगों को ही चुन रखा है।"

इसके उपरान्त तमोगुण के विकार से परे रहने वाले चन्द्रचूड़ महादेव बारात के साथ हिमालय के नगर की ओर चल पड़े। उनके आगे-आगे विश्वावसु इत्यादि प्रवीण गंधर्व गीत गाते चल रहे थे, जिनमें महादेव द्वारा त्रिपुर को नष्ट करने की कथा का वर्णन किया गया था।

महादेव का बैल खिलवाड़-सा करता हुआ उन्हें आकाश पथ में ले जा रहा था। उसके गले में बन्धी हुई सोने की घंटियां बज रही थीं और वह बादलों से लिपटे हुए अपने सींगों को हिलाता हुआ चल रहा था। वे बादल ऐसे प्रतीत होते थे, मानो नदी के किनारों में टक्कर मारते समय उसके सींगों में नदी का कीचड़ लग गया हो।

वह बैल देखते-देखते हिमालय के उस नगर में पहुँच गया, जिस पर आज तक शत्रुओं का घेरा कभी नहीं पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था कि महादेव ने जो अपनी दृष्टि दूर हिमालय के नगर पर लगाई हुई थी, उसी के सुनहले तारों से खिचा हुआ वह बैल आगे बढ़ा जा रहा था।

हिमालय के नगर के पास पहुँच कर नीलकंठ महादेव मार्ग के निकट पृथ्वीतल पर उतर आये। यह मार्ग वही था, जहाँ उनके उन बाणों के चिन्ह बने हुए थे, जिनसे उन्होंने त्रिपुर का संहार किया था। हिमालय के नगरवासी ऊपर की ओर मुँह उठाये कुतूहल से उन्हें देख रहे थे।

पर्वतराज हिमालय अपने समृद्धिशाली इष्ट-बन्धुओं को साथ लेकर हाथियों पर चढ़कर महादेव के स्वागत के लिये आगे बढ़ा। ऐसा प्रतीत होता था, मानो फूलों से लदे हुए हिमालय के मध्यम शिखर ही स्वागत के लिये आगे बढ़ चले हों।

हिमालय नगर के विशाल द्वार के फाटक खुले हुए थे और उसके दोनों ओर से देवताओं और बादलों के दल आकर आपस में मिल गये। उनका शब्द दूर-दूर तक सुनाई पड़ने लगा और ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे एक पुल के नीचे आकर दो विशाल जलधाराएँ मिल गई हों।

जब त्रिलोकी द्वारा पूजित महादेव ने हिमालय को प्रणाम किया तो हिमालय को इतनी लज्जा आई कि उसे यह पता भी न चला कि महादेव की महिमा के सम्मुख उसका अपना सिर पहले ही झुक गया था।

प्रेम के मारे हिमालय का मुख आनन्द से खिल उठा। वह आगे बढ़कर अपने जामाता महादेव के निकट पहुँचा और उनके आगे चलता हुआ उन्हें अपने महल की ओर ले चला। महल तक सारे मार्ग में इतने फूल बिछे हुए थे कि गिट्टों तक पैर उनमें धँस जाते थे।

उस समय नगर की सुन्दरियों को महादेव के दर्शन की एसी तीव्र लालसा थी कि अपने-अपने महलों में उन्होंने अन्य सब काम छोड़ दिये और महादेव के दर्शन के लिये दौड़ पड़ीं।

एक तरुणी महादेव को देखने के लिये एकाएक हड़बड़ा

कर जो खिड़की की ओर भागी, तो उसके जूड़े की माला खुल गई। परन्तु उसने उसे बांधने का यत्न न किया और अपने बालों को हाथों से पकड़े-पकड़े ही खिड़की पर पहुँच गई।

एक और कोई सुन्दरी पैर फैला कर अपने तलुए में दासी से आलता लगवा रही थी। तभी बरात का शोर मचा और वह तेज़ी से दौड़ कर झरोखे तक पहुँची, जिससे झरोखे तक गीले आलते से पैरों के निशान बनते चले गये।

एक और कोई ललना अपनी दायी आँख में अंजन लगा चुकी थी और अभी बांयीं आँख में अंजन लगाना शेष था। तभी बारात के शोर को सुनकर वह अंजन लगाना भूल कर उसी प्रकार सलाई हाथ में लिये खिड़की के पास जा पहुँची।

एक और युवती जो खिड़की में से बारात देखने के लिये तेजी से भागी तो उसका कटिबन्ध खुल गया। परन्तु उसने उसे बांधा नहीं, बल्कि हाथों से कपड़े को सम्हाले-सम्हाले ही खिड़की के पास पहुँच गई। उसके हाथ में पहने हुए कंकण का रत्न उसकी नाभि के पास तक पहुंच गया था, जिसकी चमक से उसकी नाभि स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

एक और स्त्री बैठी मोतियों की माला पिरो रही थी। वह जो एकाएक लपक कर उठी तो माला के मोती तो रास्ते में बिखरते चले गये, केवल अंगूठे में लिपटा हुआ धागा ही बाकी बचा।

सारे मार्ग में भवनों के झरोखों से कुतूहल के साथ स्त्रियां बाहर झांक रही थीं। उनके चंचल नेत्रों से युक्त मुख ऐसे

प्रतीत होते थे, मानो झरोखों में ढेर के ढेर कमल टाग दिये गये हों, जिन पर भौंरे मंडरा रहे हों। उन मुखों से निकले आसव की गन्ध झरोखों में उभर रही थी।

इसके पश्चात् महादेव बड़े राजमार्ग पर पहुँच गये, जिस पर बहुत ऊँचा बन्दनवार सजा था और झडिया फहरा रही थी। दिन के समय भी महादेव ने अपने मस्तक पर विद्यमान चन्द्रमा की चाँदनी से उन महलों के शिखरों की शोभा चौगुनी कर दी।

उन परम सुन्दर महादेव को अपनी आँखों से स्त्रिया पी सी रही थी और उन्हे अन्य किसी भी वस्तु का ध्यान नही था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उनकी अन्य सब इन्द्रियां भी आकर उनकी आखों मे ही समा गई हों।

कोई सुन्दरी कहने लगी : "पार्वती ने सुकुमार होकर भी इन्हें पाने के लिये जो घोर तपस्या की, वह ठीक ही थी। यदि कोई नारी इनकी दासी भी बन सके, तो उसका जीवन सफल है, फिर इनकी पत्नी बनने के सौभाग्य का तो कहना ही क्या।"

दूसरी बोली : "इन दोनों का सौन्दर्य एक-दूसरे के अनुकूल ही है। यदि विधाता इस जोड़े को मिला न देता, तो उसका इन दोनों को इतना सौन्दर्य प्रदान करना व्यर्थ ही हो जाता।"

एक और कहने लगी : "महादेव ने क्रुद्ध होकर कामदेव को भस्म नहीं किया। मुझे तो ऐसा लगता है कि इनके सौन्दर्य

को देखकर कामदेव लज्जा के मारे स्वय ही जलकर भस्म हो गया है ।"

किसी ने कहा : "इन महादेव के साथ, जिन्हें लोग पाने की कामना किया करते है, सम्बन्ध स्थापित करके हिमालय का पहले से ही ऊँचा मस्तक और भी अधिक ऊँचा हो जायगा ।"

इस प्रकार ओपधिप्रस्थ की सुन्दरियों की तरह-तरह की कर्णमधुर बातों को सुनते हुए महादेव हिमालय के महल मे जा पहुँचे । वहां इतनी भीड़ थी कि मंगलाचार के रूप में जो खीले बिखेरी गई, वे लोगो की बाहों की रगड़ से ही पिसकर चूरा हो गई ।

वहां पहुँचकर विष्णु ने हाथ का सहारा देकर महादेव को बैल से उतारा, मानो शरद् ऋतु के मेघ पर से सूर्य नीचे उतर आया हो । फिर महादेव हिमालय के भवन के अन्दर पहुंचे, वहां ब्रह्मा पहले से ही बैठे हुए थे ।

उनके पीछे को ओर इन्द्र इत्यादि देवताओं तथा सप्तर्षियों के साथ अन्य बड़े-बड़े ऋषियों और गणों ने हिमालय के भवन में उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे अच्छा कार्य करने के पीछे-पीछे उसका उत्तम परिणाम आता है ।

वहां बिस्तर पर बैठकर महादेव ने विधिपूर्वक हिमालय द्वारा दी गई रत्नो से युक्त पूजा सामग्री और मधु से युक्त दही तथा नये दुशाले को मन्त्र पाठ करते हुए ग्रहण किया ।

उसके बाद नये पट्ट वस्त्र पहिने उन महादेव को अन्तः-

पुर के विनीत और कुशल सेवक वधू पार्वती के समीप उसी प्रकार ले गये, जैसे नई चन्द्रमा की किरणें झाग और लहरों वाले समुद्र को किनारे तक पहुँचा देती हैं।

उस कुमारी पार्वती के पूर्ण चन्द्र के समान मुख की कान्ति को देखकर महादेव के नयन रूपी कुमुद खिल उठे और चित्त रूपी जल उसी प्रकार स्वच्छ हो उठा, जैसे शरद्‌ऋतु में संसार में कुमुद खिल उठते हैं और जल निर्मल हो उठता है।

बीच-बीच में महादेव और पार्वती एक-दूसरे की ओर देखते थे और उनकी आँखें मिल जाती थीं। परन्तु कुछ देर आंखें मिलाये रखने के बाद वे अपने चंचल नयनों को अलग कर लेते थे, क्योंकि उन्हें लज्जा अनुभव होने लगती थी।

हिमालय ने पार्वती का हाथ पकड़कर महादेव के हाथ में दिया। उस लाल अंगुलियों वाले हाथ को महादेव ने पकड़ लिया, जो कि ऐसा प्रतीत होता था कि पार्वती के शरीर में छिप कर बैठा हुआ कामदेव डरते-डरते अपने अंकुर निकाल रहा हो।

दोनों के हाथ परस्पर छूते ही पार्वती के रोएं खड़े हो गये और महादेव की अंगुलियां पसीने से गीली हो गईं। ऐसा लगा जैसे कामदेव ने उन दोनों को एक साथ ही अपने काबू में कर लिया हो।

अन्य वरों और वधुओं के विवाह के समय स्मरण किये जाने पर जो महादेव और पार्वती विवाह की शोभा को बढ़ाते

हैं, इस समय उन दोनों का अपना विवाह होने के अवसर पर जो विलक्षण शोभा थी, उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

ऊँची-ऊँची आग की लपटें उठ रही थीं। उनके चारों ओर प्रदक्षिणा करता हुआ महादेव और पार्वती का वह जोड़ा ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो दिन और रात एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए मेरु पर्वत के चारों ओर चक्कर लगा रहे हों।

जब वे दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे के स्पर्श का आंखें मूंद-कर आनन्द लेते हुए अग्नि के चारों ओर तीन चक्कर लगा चुके तो पुरोहित ने वधू के हाथ से जलती हुई आग में खीलें डलवाईं।

उसके बाद पार्वती ने पुरोहित के कहने पर खीलों की गन्ध से भरे हुए उस धुएं को अपनी अंजली में भर कर मुख के पास ले जाकर सूंघा। वह धुआँ उसके कपोलों के पास कुंडली बनाता हुआ क्षण भर तक ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उनके कानों का आभूषण बन गया हो।

खीलों का धुआं सूंघने से पार्वती के गालों पर हल्का सा पसीना चमक उठा। उनकी आंखों में लगा हुआ काला अंजन इधर-उधर फैल गया और उनके कानों पर रखे हुए जौ के अंकुर मलिन से हो गये।

पुरोहित ने पार्वती से कहा—"बेटी यह अग्नि तुम्हारे इस विवाह का साक्षी है। अब तुम सब सोच-विचार छोड़ कर अपने पति महादेव के साथ सदा धर्माचरण करना।"

पार्वती ने पुरोहित का वह वचन अपने कानों को आँखो तक फैला कर पी सा लिया; जैसे ग्रीष्मऋतु से तपी हुई पृथ्वी पहले-पहल हुई वर्षा के जल को अधीरता से पी लेती है।

उसके पश्चात् जब स्थिरचित्त महादेव ने पार्वती से ध्रुव का दर्शन करने के लिये कहा तो उसने मुँह ऊपर की ओर उठाकर लज्जा से रुँधे हुए गले से जैसे-तैसे इतना भर कहा "देख लिया।"

इस प्रकार सब विधियों को जानने वाले पुरोहित ने जब उनके विवाह की सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करा दी तब उन दोनों ने, जो समस्त ससार के माता-पिता हैं, कमलासन पर बैठे हुए पितामह ब्रह्मा को प्रणाम किया।

ब्रह्मा ने वधू पार्वती को आशीर्वाद दिया कि "हे कल्याणी, तुम वीर माता बनो।" परन्तु महादेव को क्या आशीर्वाद दिया जाय, यह बात ब्रह्मा वाणी के स्वामी होते हुए भी सोच न सके; और विचारमग्न रह गये।

इसके बाद वे दोनों चौक मे बनी हुई एक सजी हुई वेदी पर आकर स्वर्ण के आसन पर बैठ गये और वहाँ उनके ऊपर गीले चावल छिड़कने की विधि पूरी की गई। लक्ष्मी ने स्वयं उन दोनों के ऊपर आकर कमल का छत्र लगा लिया। उस छत्र की नाल खूब मोटी थी और उस छत्र के किनारों पर लगे हुए जलबिन्दु मोतियों की भांति चमक रहे थे।

उसके बाद सरस्वती ने दो प्रकार की वाणी में उस

महादेव और पार्वती के युगल की स्तुति की। वर की स्तुति उसने शुद्ध संस्कृत भाषा में की और वधू की स्तुति सरल और सुबोध भाषा मे।

इसके बाद उन दोनों ने अप्सराओं द्वारा खेला गया एक नाटक देखा, जिसमें अलग-अलग सन्धियों में अलग-अलग शैलियों का प्रयोग किया गया था और अनेक रसों के कारण जिसका आकर्षण बढ गया था, और जिसमे सुन्दर नृत्य भी थे। यह पहला नाटक था।

उस नाटक की समाप्ति पर देवताओं ने हाथ जोड़ कर अपने किरीटों समेत सिर भूमि पर रख कर महादेव से याचना की कि अब कामदेव के शाप की अवधि समाप्त हो गई है और आप उसे फिर जीवित करके अपनी सेवा मे नियुक्त करें।

इस समय महादेव के हृदय मे क्रोध नही था। उन्होने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और कामदेव को यह अनुमति दी कि वह उन पर भी बाण चला सकता है। यदि स्वामी लोगो के सम्मुख उपयुक्त अवसर पर प्रार्थना की जाय तो वह सफल हो ही जाती है।

इसके बाद महादेव ने उन देवताओ को विदा दी और वे हिमालय की कन्या पार्वती को हाथ से पकड़े उस शयनागार मे गये, जहाॅ स्वर्ण से बने कलश रखे थे। जिसमें भूमि पर शय्या बिछी थी और जिसमे पुष्प मालाए टंगी हुई थी।

उस भवन मे पहुँच कर महादेव ने पार्वती का मनोविनोद

किया। वह नये-नये विवाह की लज्जा से और भी सुन्दर हो उठी थी। जब महादेव उनका आंचल हटाने लगते तो वह मुँह फेर लेती थी और अपनी बचपन की सखियों को भी बड़ी मुश्किल से ही कुछ उत्तर देती थी। उस समय महादेव के संकेत पर उनके गणों ने तरह-तरह से मुँह बनाये, जिसे देख-देख कर पार्वती मुँह छिपा-छिपा कर हँसने लगी।

आठवाँ सर्ग*

विवाह की विधि पूरी हो जाने के उपरान्त पार्वती का शरीर महादेव के प्रति प्रेम का भाव तथा साथ ही झिझक और सकोच के कारण अत्यन्त मनोहर हो उठा।

बुलाने पर वह कुछ उत्तर नहीं देती थी और आंचल पकड़कर खींचने पर जाने का यत्न करती थी। उससे महादेव को आनन्द ही मिलता था।

कभी महादेव जानबूझकर छल से आंखें मीचकर लेट रहते थे। तब पार्वती बड़े कुतूहल के साथ उनके मुख की ओर एकटक निहारने लगती थी। और जब महादेव सहसा मुस्करा कर आँखे खोल देते थे, तो वह चट से अपनी आँखे इस प्रकार मूंद लेती थी, मानो आँखें बिजली की चमक से मुद गई हों।

सखियां कहती "सखि, एकान्त में महादेव के साथ बिना घबराये जैसा-जैसा हम कहती है वैसा-वैसा ही करना।" परन्तु जब उनके प्रिय महादेव उनके सम्मुख आ जाते, तब उन्हें सखियों की सिखाई हुई उन बातों में से एक भी याद न रहती।

जब कभी बात चलाने के लिये महादेव कुछ भी यों ही

---

* इस सर्ग के कुछ शृंगाररसप्रधान स्थलों का हिन्दी भाषान्तर नहीं किया गया है।

चर्चा करने लगते, तब पार्वती उनकी बात का कुछ भी उत्तर बोल कर न देती। केवल उनकी ओर देख कर सिर हिला कर ही 'हां' या 'ना' करती रहती।

कभी-कभी एकान्त में महादेव एकटक पार्वती का सौन्दर्य पान करने लगते तब लज्जा के मारे वह अपने दोनों हाथों से महादेव के दोनों नेत्रों को बन्द कर देती। पर तब महादेव अपना तीसरा नेत्र खोल कर देखने लगते और पार्वती का सारा यत्न व्यर्थ हो जाता।

प्रभात के समय जब सखियां उससे बीती हुई रात का हाल पूछती थीं, तो वह लज्जा के मारे उनका कुतूहल शान्त नहीं कर पाती थी, यद्यपि उसका मन सब कुछ सुना डालने को उतावला हो रहा होता था।

कभी-कभी वह दिन के समय दर्पण के सामने खड़ी होकर शिवजी द्वारा बनाए नखचिन्हों को देखा करती। और यदि उस समय कहीं पीठ के पीछे खड़े होकर महादेव उसे देख लेते, तो वह लज्जा के मारे न जाने क्या-क्या कुछ करने लगती।

महादेव उसके यौवन का भली भाँति उपभोग कर रहे हैं, यह देख कर उसकी माता मेना को बड़ा सन्तोष होता, क्योंकि यदि वधू अपने पति को प्रिय हो तो उसकी माता का मन निश्चिन्त हो जाता है।

कुछ ही दिनों में उन दोनों का एक-दूसरे के प्रति प्रेम इतना दृढ़ हो गया कि दोनों को एक-दूसरे को देखे बिना पल

भर भी कल न पड़ती थी और दोनों एक-दूसरे के वियोग में ज़रा देर में ही बेचैन हो उठते थे।

जिस प्रकार अपने अनुरूप वर महादेव से पार्वती प्रेम करती थी, उसी प्रकार महादेव भी उन्हीं को प्रेम करते थे। जान्हवी सागर को छोड़कर और कहीं नहीं जाती और वह सागर भी उस जान्हवी के मुख से निकले जल का ही आनन्द लिया करता है।

और कभी विहार करते समय पार्वती की अलकों में लगा पराग महादेव के मस्तक में विद्यमान तीसरे नेत्र में जा पड़ता था, जिससे नेत्र विकल हो उठता था। तब महादेव पार्वती से उसमें फूंक मारने को कहते थे और पार्वती अपने कमल की गन्ध वाले मुख से फूँक मार कर ठीक कर दिया करती थी।

इस प्रकार इन्द्रियों को सुख देने वाले उपायों का अवलम्बन करके महादेव ने कामदेव पर बड़ा उपकार किया। और इस प्रकार उमा के साथ समय व्यतीत करते हुए महादेव हिमालय के यहाँ एक मास भर रहे।

इस के पश्चात् उन्होंने हिमालय से प्रस्थान की अनुमति माँगी। पार्वती घर छोड़ कर जायगी, इससे हिमालय को बहुत दुःख हुआ। परन्तु उसने अनुमति दे ही दी और महादेव पार्वती को साथ ले कर अपने विलक्षण गति वाले बैल पर सवार हो कर आकाश में उड़ते हुए जहाँ-तहाँ विहार करने लगे।

वहां से महादेव वायु के समान वेगवान बैल पर चढ़कर मेरु पर्वत पर पहुँचे।

इसके बाद पार्वती के मुख कमल के भ्रमर महादेव मन्दराचल पर पहुँचे। यहा के पत्थरो पर विष्णु के पदचिन्ह अकित थे और ताजे अमृत के छीटे पड़े हुए थे।

इसके पश्चात् महादेव पार्वती को साथ लेकर कुबेर के पर्वत कैलास पर गये। वहा रावण की डरावनी हुकार सुनकर पार्वती ऐसी डरी कि खूब जोर से महादेव के गले मे लिपट गई। वहां उन्होंने चांदनी का खूब आनन्द लिया।

इसके बाद जब वे एक बार मलय पर्वत पर पहुँचे, तो वहां पर चन्दन की लताओं को कम्पित करने वाले दक्षिण पवन ने पार्वती की थकान उसी प्रकार दूर की, जिस प्रकार कोई मधुरभाषी चाटुकार अपने स्वामी का मन बहलाता है। उस पवन में लवग और केसर की मादक गन्ध भरी हुई थी।

कभी पार्वती आकाश गगा मे स्नान करती और सुनहले कमलों से महादेव को मारती, बदले में महादेव हाथों से खूब जोर-जोर से पानी उछालते, जिससे पार्वती की आँखे मिच जाती। उस समय मछलिया पार्वती की कमर के आस-पास आकर इस प्रकार इकट्ठी हो जातीं, जिससे ऐसा प्रतीत होता, मानो उसने एक और करधनी पहन ली है।

कभी महादेव नन्दन वन मे जाकर पार्वती का पारिजात के उन पुष्पों से शृगार करते, जिनसे इन्द्र की पत्नी शची का शृंगार हुआ करता था। उस समय उन्हें देवागनाएं बड़ी चाह-भरी दृष्टि से देखा करतीं।

इस प्रकार महादेव अपनी पत्नी के साथ पार्थिव तथा दिव्य

सुख का आनन्द ले चुकने के पश्चात् एक बार सायंकाल के समय, जब सूर्य की धूप अरुण हो चली थी, गन्धमादन पर्वत पर जा पहुँचे ।

वहा महादेव एक बड़ी सी शिला पर बैठ गये । पार्वती उनके बाईं ओर उनकी बांह का सहारा लेकर बैठ गई । उस समय सूर्य की कान्ति इतनी मन्द हो गई थी कि उसकी ओर सरलता से देखा जा सकता था । उसी की ओर देखते हुए महादेव पार्वती से कहने लगे—

"पार्वती! देखो, एक तिहाई लाल भाग वाली तुम्हारी इन आखो से होड़ करने वाले कमलों की शोभा को मलिन करता हुआ सूर्य उसी प्रकार दिन को समेट रहा है, जिस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा प्रलय काल में सारे संसार को समेट लेते है ।

"सूर्य के नीचे की ओर झुक जाने के कारण उसकी किरणे अब हिमालय के प्रपातों से उड़ने वाली फुहारों पर पडनी बन्द हो गई है और इसीलिये उन फुहारों पर सूर्य-किरणों के पड़ने से जो इन्द्रधनुष बन रहे थे, वे भी अब छिप गये है ।

"कमलों का पराग अपनी चोंच में भरे ये एक-दूसरे से अलग होते हुए चकवा-चकवी आर्त्त विलाप कर रहे है । इस समय विरह व्याकुल होने के कारण इन दोनों के बीच के सरोवर का छोटा-सा पाट भी इन दोनों को बहुत बड़ा प्रतीत होने लगा है ।

"ये हाथी, जो दिन भर सल्लकी के पेड़ों को तोड़ते रहे थे और उन टूटे हुए वृक्षों की गंध से आस-पास का सारा स्थान

भर उठा था, अब अपने दिन में विश्राम करने के स्थान को छोड़ कर पानी पीने के लिये उन सरोवरों की ओर चल पड़े हैं, जिसमें कमलों में बन्द हुए भ्रमर सो रहे हैं। अब ये हाथी प्रभातकाल होने तक वनों में ही घूमते रहेंगे।

"हे मितभाषिणी, वह उधर देखो, पश्चिम दिशा में नीचे की ओर झूलते हुए सूर्य ने अपने प्रतिबिम्बों द्वारा सरोवर के जल में कैसा सुनहला सेतु-सा बना दिया है!

"ये जंगली सूअरों के यूथपति दिनभर की धूप कीचड़ में लोट-लोट कर बिता देने के बाद अब जोहड़ों में से निकल-निकल कर बाहर आ रहे हैं। इनके लम्बे दाँत ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो इनकी दाढ़ों में चबाई हुई कमलनाल के टुकड़े फँसे रह गये हैं।

"हे पार्वती, वह देखो उधर वृक्ष की चोटी के ऊपर बैठा हुआ मोर ऐसा लगता है जैसे धूप को पिये जा रहा है और इसीलिये धूप घटती जा रही है और दिन छिप रहा है। उस मोर के पंखों में बनी चन्द्रिकाएँ पिघले हुए सोने की भाँति चमक रही हैं।

"आकाश में पूर्व की ओर अंधेरा दिखाई पड़ने लगा है और पश्चिम की ओर अभी प्रकाश शेष है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह आकाश एक विशाल सरोवर हो, जिसका पानी धूप से सूखता जाने के कारण एक ओर तो कीचड़ दिखाई पड़ने लगी हो और दूसरी ओर थोड़ा-सा जल शेष हो।

"इस समय आश्रमों की शोभा विचित्र हो उठी है।

कुटियाओं के आँगन में जंगल से लौट-लौट कर हिरन घुस रहे हैं। वृक्षों की जड़ें पानी देने से गीली हो उठी हैं। दूध देने वाली गौएँ आश्रम में लौट रही हैं और जगह-जगह यज्ञ की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी है।

"इस सन्ध्या के समय यद्यपि कमलों के फूल मुंदकर बन्द होने लगे हैं फिर भी अभी उनमें ऊपर थोड़ा-सा छेद बाकी है, जो मानो प्रेमपूर्वक इसीलिये खुला हुआ है, जिससे रात के समय निवास के लिये उत्सुक भ्रमर उसमें आजाएं।

"दूर पर सूर्य की बहुत थोड़ी-सी झलक दिखाई पड़ रही है। उससे पश्चिम दिशा ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो कोई कन्या हो, जिसने अपने माथे पर पराग से भरे हुए बन्धुजीव फूल का तिलक लगाया हुआ हो।

"इस समय ये बालखिल्य ऋषि, जो इकट्ठे हजारों की संख्या में साथ रहते हैं, सूर्य के घोड़ों को प्रिय लगने वाले सामवेद के मन्त्र गाकर सूर्य की स्तुति कर रहे हैं, जो अपना तेज अग्नि को देकर अस्ताचल की ओर जा रहा है।

"इस समय सूर्य के घोड़े नीचे की ओर सिर किये उतर रहे है, जिससे उनके माथे के बाल नीचे की ओर झुक गये हैं। उनकी कानों की चौंरियाँ रह-रह कर आँखों के सामने आ जाती हैं। उनके अयाल कंधे पर रखे हुए जुए से छितरा गये हैं। उन घोड़ों के रथ पर सवार सूर्य दिवस को महासमुद्र में डुबा कर अस्त हो रहा है।

"सूर्य के अस्त होते ही सारा आकाश सो गया-सा प्रतीत

होने लगा है। बड़े-बड़े तेजस्वियों का यही हाल होता है कि जब तक वे ऊँची स्थिति में रहते हैं, तब तक सब ओर प्रकाश रखते हैं और जब वे पदच्युत हो जाते हैं तो सब ओर अंधेरा छा जाता है।

"सूर्य का वन्दनीय मंडल जब अस्ताचल पर जाकर छिप गया, तो यह सन्ध्या भी उसके पीछे-पीछे ही चली जा रही है। जिसने अपने उदय के समय इस सन्ध्या को अपने आगे रखा था, उसकी विपत्ति के समय वह उसके पीछे-पीछे क्यों नहीं जायगी ?

"हे घुंघराली अलकों वाली पार्वती ! वह देखो, बादलों के किनारे कैसे लाल, पीले और भूरे रंगों में रंग उठे हैं। लगता है कि इस सन्ध्या ने यह सोच कर इन्हें कूंची से रंग दिया है कि तुम इन्हें देखोगी और देखकर प्रसन्न होओगी।

"अस्त होते हुए सूर्य ने अपना सन्ध्याकाल का प्रकाश मानो सिहों की केसरों में और नवपल्लवों से भरे हुए वृक्षों में तथा पर्वतों के गेरू से रंगे हुए शिखरों में बाँट दिया है, जिससे ये सब अरुणाभ हो उठे हैं।

"हे पार्वती, वह देखो उधर वे सब तपस्वी सूर्य को पवित्र जल चढ़ा रहे हैं और आत्मशुद्धि के लिये इस सन्ध्या समय ब्रह्म का ध्यान करते हुए विधिपूर्वक मन्त्र पाठ कर रहे हैं।

"इसलिये तुम इस समय मुझे कुछ देर के लिये अनुमति दो कि मैं भी सन्ध्या कर डालूं। इतनी देर तक ये कुशल सखियाँ तुम्हारा मन बहलाती रहेंगी।"

यह सुनकर पार्वती ने दाँतों से अपना ओठ दबा लिया और ऐसा प्रदर्शित किया मानो महादेव की बात उसने सुनी ही नही है और पास बैठी हुई अपनी सखी विजया से यों ही कुछ की कुछ बातचीत करने लगी।

महादेव ने भी अपनी सायंकालीन सन्ध्या विधिपूर्वक मन्त्र पढ़ते हुए समाप्त की और उसके बाद फिर पार्वती के पास आकर, जो रूठकर मुँह फुलाये बैठी थी, मुस्कराते हुए कहने लगे—

"हे अकारण रूठने वाली, अपना क्रोध त्याग दो। मैंने इस सन्ध्या को ही तो प्रणाम किया है, अन्य किसी स्त्री को नहीं। क्या तुम्हें मालूम नही कि मै तुम्हारा उसी प्रकार प्रेमी हूँ, जैसे चकवा चकवी का प्रेमी होता है।

"हे मानिनी, जिस समय स्वयंभू ब्रह्मा ने पितरों का निर्माण किया था, उसी समय उन्होंने एक और छोटी-सी अपनी मूर्ति बनाई थी। वही मूर्ति अब उदय और अस्त के समय प्रकट होती है। इसी से मैं उसका इतना आदर करता हूँ।

"हे पार्वती, देखो इस समय वह सन्ध्या एक ओर से बढ़ते हुए अन्धकार के कारण छिपती सी जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई गेरू की नदी बह रही हो, और उसके एक किनारे पर तमाल वृक्षों का घना वन खड़ा हुआ हो।

"पश्चिम दिशा में सन्ध्या की, अस्त होने से बची हुई प्रकाश की एक लाल लकीर-सी दिखाई पड़ रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो युद्धभूमि में खून से रंगी हुई लाल

तलवार टेढ़ी करके पृथ्वी पर डाल दी गई हो।

"हे विशाल नयनों वाली पार्वती, इस समय रात्रि और दिन के सन्धिकाल का प्रकाश सुमेरु के पीछे छिप गया है। इसलिये सब दिशाओं में घना अंधेरा निरंकुश होकर फैलता जा रहा है।

"न ऊपर कुछ दिखाई पड़ता है, न नीचे; न दायें; न बायें; न आगे और न कुछ पीछे ही दिखाई पड़ता है। सघन अंधकार से घिरा हुआ यह संसार ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो रात्रि के गर्भ में पड़ा हुआ हो।

"शुद्ध और मलिन, स्थिर और चंचल, टेढ़ी और सीधी सभी प्रकार की वस्तुएँ इस अंधकार के कारण एक समान हो गई हैं। दुष्टों के महत्वपूर्ण पद पर पहुँचने को धिक्कार है। जिसके कारण भले और बुरे में कोई भेद नहीं रहता।

"हे कमलानने, वह देखो! पूर्वदिशा का मुखभाग केवड़े के पराग से रंग गया सा दिखाई पड़ने लगा है। अवश्य ही रात्रि के अन्धकार को दूर करने के लिये चन्द्रमा निकलने लगा है।

"इस समय चन्द्रमा मन्दराचल की ओट में है और तारों से भरी हुई यह रात ऐसी प्रतीत हो रही है, जैसे तुम अपनी प्यारी सखियों के साथ बातचीत कर रही हो और मैं पीठ पीछे खड़ा होकर उन बातों को सुन रहा होऊँ।

"दिन छिपने से पहले चन्द्रमा निकल नहीं सका। अब निकला हुआ यह ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो चाँदनी के रूप

में मुस्कराता हुआ रात्रि के पूछने पर उसे पूर्वदिशा के रहस्य बतला रहा हो।

"देखो, चन्द्रमा का रंग इस समय पके हुए प्रियंगु के फल के समान लाल है और उसका प्रतिबिम्ब सरोवर के जल में पड़ रहा है। चन्द्रबिम्ब के आकाश में होने और प्रतिबिम्ब के सरोवर के जल में होने से ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो चकवा-चकवी का जोड़ा एक-दूसरे से दूर जा पड़ा हो।

"इस नये उदित हुए चन्द्रमा की किरणें नये जौ के अंकुरों के समान कोमल हैं और तुम चाहो तो उन्हें अपने कानों पर सजाने के लिये नाखूनों से तोड़ सकती हो।

"ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा अपनी किरणरूपी अंगुलियों से निशा के तिमिर रूपी बालों को एक ओर समेट कर उसके मुख को चूम रहा हो; और वह निशा आनन्दित होकर अपने कमलरूपी नयनों को मूँद कर लेटी हुई हो।

"पार्वती, देखो इस ऊपर उठते हुए चन्द्रमा की किरणों से आकाश का घना अंधकार किस प्रकार फट गया है! ऐसा प्रतीत होता है मानो हाथियों के स्नान से मैला हुआ मान-सरोवर का जल धीरे-धीरे स्वच्छ होता जा रहा हो।

"इस चन्द्रमा की लाली अब समाप्त हो गई है और अब इसका मंडल शुद्ध होकर चमकने लगा है। शुद्ध स्वभाव वाले व्यक्तियों में यदि किसी समय कोई विकार आ भी जाय, तो वह स्थायी नहीं होता।

"इस समय पर्वत के ऊँचे भागों पर चन्द्रमा की चाँदनी पड़

रही है और नीचे के स्थलों में घाटियों और नालों में रात्रि का अंधकार भरा हुआ है। विधाता ने गुणों और दोषों को उनके अनुकूल ही स्थान दिया है।

"इस समय चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श के कारण चन्द्रकान्त मणियों में से जल गिर रहा है, जिससे पर्वत के निचले भागों में खड़े पेड़ों पर सोये हुए मोर वर्षाकाल आया समझकर असमय में ही जाग उठे हैं।

"सुन्दरि ! देखो, इस समय चन्द्रमा की किरणें कल्पवृक्ष की चोटियों पर चमक रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वहां चन्द्रमा अपनी किरणों में फूल पिरो-पिरो कर हार बनाना चाह रहा है।

"पहाड़ कहीं ऊँचा है कहीं नीचा, इसीलिये कहीं चाँदनी छिटक रही है और बीच-बीच में कहीं अन्धकार भरा हुआ है। ऐसा दिखाई पड़ता है मानो किसी मतवाले हाथी के शरीर पर रंग-बिरंगी चित्रकारी कर गई हो।

"इस कुमुद ने चन्द्रमा की चांदनी का रस खूब पेट भर भर कर पिया था। अब यह उसे पचा नहीं पा रहा है, इसलिये कुमुद फट-सा पड़ा है और इसके अन्दर से गुनगुनाता हुआ भौंरा निकल रहा है।

"हे पार्वती, उधर देखो शुभ्र चांदनी कल्पवृक्ष पर लटके हुए रेशमी वस्त्रों के साथ एकाकार हो गई है। जब ज़ोर की हवा चलती है, तभी चांदनी और वस्त्रों का भेद प्रकट होता

है; क्योंकि वस्त्र वायु से हिलने लगते हैं और चांदनी ज्यों की त्यों रहती है।

"इस समय वृक्षों के नीचे, पत्तियों के बीच में से होकर आने वाली चांदनी ऐसी प्रतीत होती है, मानो फूल झरकर भूमि पर पड़े हुए हों। इस समय फूलों की पंखुरियों के समान इस बिखरी हुई चांदनी को तुम्हारे बालों में भी गूँथा जा सकता है।

"हे सुमुखि, इस समय ये जगमगाती हुई तारिकाएँ चन्द्रमा के पास उसी प्रकार दिखाई पड़ रही हैं, जैसे विवाह के उपरान्त कोई कन्या पहले-पहल घबराहट के साथ कांपती हुई अपने वर के पास पहुँचती है।

"हे पार्वती, तुम जो चन्द्रबिम्ब की ओर आँखें लगाये देख रही हो, इससे तुम्हारे गालों पर चांदनी चढ़ती सी जा रही है। तुम्हारे ये गाल पहले ही पके हुए सरकंडे के रंग के समान शुभ्र हैं और स्वाभाविक आनन्द से खिले से जा रहे हैं।

"यह गन्ध मादन वन की अधिष्ठात्री वनदेवता तुम्हें यहां बैठे देखकर लोहितार्क मणि से बने हुए पात्र में कल्पवृक्ष का आसव लेकर उपस्थित हुई है।

"वैसे तो हे विलासिनि, तुम्हारा मुख पहले से ही गीले केसर की सी गन्ध से युक्त है और तुम्हारे नयन स्वभावतः ही मद से भरे और लाली लिये हुए है। यह आसव पीने पर भी तुम्हारी शोभा में और क्या वृद्धि कर पायेगा ?

"फिर भी सखियों के प्रेम का निरादर नहीं करना चाहिये।

लो, काम को उत्तेजित करने वाले इस आसव का पान कर लो।" बड़े मधुर ढंग से यह कहते हुए महादेव ने पार्वती को आसव पिलाया।

जैसे नियति के विचित्र कौशल से आम्र का वृक्ष वसन्त में कुसुमित होकर सहकार बन जाता है, उसी प्रकार उस आसव को पीकर पार्वती के शरीर में जो परिवर्तन हुए, उनसे वह और भी मनोहर हो उठी।

कुछ ही देर में पार्वती महादेव तथा आसव का मद, इन दोनों के वशीभूत हो गयी। महादेव उसे शयनागार की ओर ले चले। आसव के कारण उसे नींद-सी आने लगी। महादेव के प्रति उसका प्रेम बढ़ गया और मद से उसके मुख पर लाली आ गई।

पार्वती के नयन घूम रहे थे। उसकी आवाज़ लड़खड़ा रही थी। मुख पर स्वेद बिन्दु झलक आये थे और वह रह-रह मुस्करा रही थी। महादेव कुछ देर तक तो उसे केवल देखते ही रह गये।

पार्वती ने कटि में समुद्र की मेखला पहनी हुई थी और वह नितम्बों के भार के कारण धीरे-धीरे चल रही थी। उसे लेकर महादेव मणिशिलाओं से बने हुए विलास भवन में पहुँचे।

वहां वे अपनी प्रिया पार्वती को साथ लेकर हंस के पंखों की श्वेत-शय्या पर लेट गये, जो देखने में गंगा की रेती के समान सुन्दर दीख रही थी। उस बिस्तर पर लेटे हुए वह ऐसे

प्रतीत हो रहे थे, मानो चन्द्रमा शरदृऋतु के मेघ पर विश्राम कर रहा हो।

जब प्रभात काल में स्वर्ण-कमल खिलने लगे और किन्नर लोग अलाप ले लेकर उनकी स्तुति गीत गाने लगे, तब देवताओं के पूजनीय महादेव जाग उठे।

उस समय गन्ध मादन के बनो से बहता हुआ वायु आने लगा, जिससे मानसरोवर मे तरगे उठ रही थी। उस वायु का स्पर्श पाकर कमलों के समूह खिलते जा रहे थे। महादेव और पार्वती भी उस वायु का आनन्द लेने लगे।

इस प्रकार पार्वती के साथ दिन-रात लगातार रहते हुए महादेव के सौ वर्ष इस प्रकार बीत गये, जैसे एक ही रात बीती हो। परन्तु उनकी आनन्द भोग की इच्छा उसी प्रकार शान्त नही हुई, जैसे समुद्र की आग समुद्र की जलराशि से शान्त नही होती।

नवां, दशवां सर्ग

जब महादेव पार्वती के साथ इस प्रकार आनन्द में मग्न थे, उसी समय उनके कमरे में एक कबूतर घुस आया। महादेव पहचान गये कि यह कबूतर अग्नि है और वह लज्जा के कारण पार्वती से अलग हो गये। वह क्रुद्ध होकर अग्नि को कुछ दंड देते, इससे पहले ही उसने अत्यन्त विनीत भाव से बताया कि मैं इन्द्र के आदेश से वहाँ आया हूँ। देवता लोग प्रार्थना करते हैं कि आप अपना पुत्र उत्पन्न करें। महादेव ने पुत्र उत्पन्न करने का संकल्प किया। उन्होंने अपना वीर्य अग्नि को दे दिया। अग्नि ने उसे ले जा कर गंगा में डाल दिया। उस समय गंगा में छहों कृत्तिकाएँ स्नान कर रही थीं। वह वीर्य उनके पेट में जा कर गर्भ बन गया। उन्हें अपने पतियो से भय लगा और वे अपने-अपने गर्भों को सरकंडों के जंगल में छोड़ आईं।

कुमारसंभव के ६ वें से १७ वें सर्ग कालिदास के ही रचे हुए हैं, यह विषय विवादास्पद होने के कारण, हम इन सर्गों का केवल कथा-सार दे रहे हैं ताकि पुस्तक का तारतम्य बना रहे।

ग्यारहवाँ सर्ग

कृत्तिकाओं ने सरकंडों के जंगल में अपने जो गर्भ छोड़ दिये थे, वे ऐसे तेजस्वी बन गये कि उनकी आभा सैंकड़ों सूर्यो से भी अधिक थी और अपने छः मुखों के कारण वे ब्रह्मा से भी अधिक बड़े प्रतीत हो रहे थे।

तब इन्द्र इत्यादि देवताओं ने विनयपूर्वक गंगा से अनुरोध किया कि वह उस शिशु का पालन-पोषण करे। गंगा ने स्त्री का रूप धारण करके उस बालक को अमृत के समान अपना दूध पिलाना आरम्भ किया। वह छः मुखों वाला कुमार गंगा का दूध पीता हुआ बहुत तेजी से बढ़ने लगा। फिर बाद में छहों कृत्तिकाएँ भी आकर उसकी सेवा करने लगी। तब उसका रूप कुछ और ही अद्भुत हो उठा। उस दिव्य रूप वाले कुमार को देखकर अग्नि, गंगा और कृत्तिकाओं की आँखों में आनन्द के आँसू भर आते थे और उनमें परस्पर यह विवाद होने लगता था कि यह मेरा पुत्र है।

इन्ही दिनों एक बार महादेव पार्वती के साथ मन के समान वेगवान विमान पर चढ़े हुए आकाश में विचरण करते हुए उस ओर जा पहुँचे। छः मुख वाले उस कुमार को देख कर महादेव और पार्वती की आँखें पुत्र-वात्सल्य के कारण आँसुओं

से छलछला आई। पार्वती ने महादेव से पूछा: "यह दिव्य देह वाला अद्भुत बालक कौन है? यह किस सौभाग्यशाली का पुत्र है और इसकी माता कौन सौभाग्यवती है? ये अग्नि, गंगा और कृत्तिकाएँ इसे अपना पुत्र बनाने के लिए क्यों इतना विवाद कर रहे हैं? यह बालक इन्हीं में से किसी का पुत्र है या अन्य किसी देव, दैत्य, गंधर्व, सिद्ध या राक्षस का पुत्र है?"

पार्वती के इस कुतूहल भरे प्रश्न को सुन कर महादेव के मुख पर मुस्कान दौड़ गई और वह बोले: "यह वीर पुत्र तुम्हारा ही है। तुम्हीं इसकी वीर माता हो। तुम्हारे अतिरिक्त और कौन ऐसा पुत्र उत्पन्न कर सकता है, जो देवताओं का कल्याण करे? रत्न तो रत्नाकर से ही उत्पन्न होता है।"

इसके बाद महादेव ने पार्वती को कुमार के जन्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया कि किस प्रकार कृत्तिकाएँ अन्त में उसे जंगल में छोड़ आई थीं। सुनकर पार्वती को बड़ा आनन्द हुआ और वे चट से विमान से उतरकर उस श्रेष्ठ पुत्र कुमार को अपनी गोद में लेने के लिए बेचैन हो उठी। जब पार्वती कुमार को अपनी गोद में लेने लगी तो आकाश में सब देवता सिर झुका कर और हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम करने लगे। गंगा, अग्नि और कृत्तिकाओं ने भी अपना विवाद बन्द करके पार्वती को प्रणाम किया। परन्तु पुत्रस्नेह से अधीर पार्वती का ध्यान उनकी ओर गया ही नहीं। पुत्र को पाकर कौन माता अपने आनन्द में सुध-बुध नहीं खो बैठती?

पुत्र को गोद में लेकर विस्मय और आनन्द के मारे पार्वती की आँखों मे आँसू भर आए। इसलिए अपने हाथों में लिये हुए पुत्र को भी कुछ देर तक तो वे देख ही न पाईं, केवल कलियों के समान कोमल अपने हाथ से पुत्र की देह को सहला-सहला कर वह अपूर्व आनन्द का अनुभव करती रही। कुछ देर बाद जब वह कुमार उन्हें दिखाई पड़ा, तो विस्मय और आनन्द से उनका गला रुँध गया। उनकी आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी और उनके हृदय में वात्सल्य का समुद्र उमड़ पड़ा। पुत्र को देखते हुए उनकी यह इच्छा होने लगी कि किसी प्रकार उन्हें हजार नेत्र प्राप्त हो सकते। पुत्र को देखकर किस माता का मन तृप्त हो पाता है? अपने जिन हाथों से पार्वती प्रणाम के समय झुके हुए देवताओं और दैत्यों की पीठ छूकर आशीर्वाद दिया करती थी, उन्हीं से पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उस बालक को उठाकर पार्वती ने अपनी गोद में बिठा लिया। उस पुत्र को गोद में लेते ही उनके रोम-रोम से वात्सल्य उमड़ने लगा; उनका हृदय आनन्द के अमृत से भर उठा और उनके स्तनों से दूध की धार बहने लगी। जब कुमार जगन्माता पार्वती के स्तनों से दूध पीने लगे, तब गंगा और कृत्तिकाएँ बड़ी ईर्ष्या से उनकी ओर देखने लगीं। महादेव की हृदयेश्वरी पार्वती अपने कमल के समान एक मुख से कुमार के छहों मुखों को बारी-बारी से चूमने लगी जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो एक कमल नाल में पाँच कमल के फूल निकल आए हों और उन पाँचों कमलों के बीच में से

उनकी आभा ही छठा कमल बनकर फूट पड़ी हो। कुमार को गोद में लिये हुए पार्वती ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही थी, मानो सुमेरु पर्वत पर उगी हुई स्वर्णलता में फल लगा हुआ हो या आकाश गंगा में कोई कमल खिल उठा हो या पूर्वदिशा में पूर्णिमा का चन्द्रमा उदित हुआ हो। पुत्र को लेकर पार्वती महादेव के हाथ का सहारा लेकर विमान पर चढ़ गई। उन दोनों को ही ऐसा चाव था कि कभी तो पार्वती उसे महादेव की गोद से उठा लेती थी और कभी महादेव उसे पार्वती की गोद से ले लेते थे। महादेव पार्वती के साथ कैलाश पर लौट आये और वहां ऊँचे पर्वत शिखरों पर बने अपने महलों में बैठकर उन्होंने अपने गणों को आदेश दिया कि पुत्र जन्म का उत्सव खूब धूमधाम के साथ मनाया जाय।

पुत्र जन्म का उत्सव बड़े आनन्द और धूमधाम से मनाया गया। शिव के गणों ने स्फटिक से बने महलों को रंग-बिरंगे कपड़ों से और कल्पवृक्ष के फूलों और पत्तों से बनी सुनहली बन्दनवारों से सजाना प्रारम्भ कर दिया। गणों ने जोर जोर से नगाड़े बजाने प्रारम्भ कर दिये, जिसकी ध्वनि दसों दिशाओं में फैलकर पुत्रोत्सव की सूचना देने लगी। पार्वती के महल में गंधर्वो और विद्याधरों की स्त्रियाँ एकत्र होकर मंगल गीत गाने लगीं। लोक-माताओं ने आकर अपने हाथ से पार्वती के कुमार के मस्तक पर दुर्वा और अक्षत से तिलक किया। उस समय अंक्य, आलिंग्य और ऊर्ध्वक नाम के अनेक वाद्य बज रहे थे और अप्सराएँ मधुर गीत गाती हुई रसमग्न होकर हाव-

भाव प्रदर्शित करती हुई नृत्य कर रही थीं। उस समय सुखद पवन बहने लगा, दिशाएँ स्वच्छ हो गईं; अग्नि का धुँआ समाप्त हो जाने से उसकी चमक बढ़ गई; जल निर्मल हो उठा और आकाश भी मेघों से शून्य होकर स्वच्छ हो गया। जगह-जगह शंख और दुन्दुभियाँ बजने लगीं और देवता लोग भी विमानों द्वारा आकाश से फूल बरसाने लगे। इस प्रकार शिव और पार्वती के पुत्र जन्म के उत्सव पर समस्त चराचर संसार आनन्दित हो उठा, परन्तु तारकासुर की राजलक्ष्मी भय से सिहर उठी।

उसके बाद वह बालक तरह-तरह की मनोहर और विचित्र लीलाएँ करता हुआ बढ़ने लगा। शिव और पार्वती उसे देखकर प्रसन्न होते थे और प्रेम से उन्मत्त होकर उसके सुन्दर मुख को बार-बार चूमा करते थे। कभी वह कुमार लड़खड़ा कर गिरता, कभी खड़ा होकर सीधा चलता, कभी काँपने लगता और कभी अकड़ कर चलता। उसकी इस प्रकार की गतियों को देखकर शिव और पार्वती फूले न समाते। वह बिना बात हँसा करता, जिससे उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान दिखाई पड़ने लगता। घर के आँगन में खेल खेल कर वह अपने सारे शरीर को धूल से भर लेता। उनकी गोदी में बैठकर बार-बार कुछ-कुछ बोलता, जिसका अर्थ समझ में नहीं आता था। फिर भी उससे माता-पिता का आनन्द बढ़ता ही था। कभी वह शिव के वाहन बैल के सींगों को पकड़ता और कभी पार्वती के सिंह की गर्दन के बालों को

सहलाता। कभी वह शृंगी की चोटी पकड़कर खीचने लगता। यह देख-देख कर शिव और पार्वती खूब प्रसन्न होते। कभी वह मुँह खोल कर 'एक' 'नौ' 'दो' 'दस' 'पाच' 'सात' इस प्रकार वह शिव के कंठ में पड़े हुए नागों के दांतों की पक्ति को उत्सुकता के साथ गिना करता। कभी शिव के कंठ पड़ी मुंडमाला के मुखों में से मोती समझ कर वह दांत उखाड़ने का यत्न करता। कभी वह शिव के सिर पर बहने वाली गंगा की धारा में अपना हाथ डाल देता और जब ठंड के कारण उसकी अंगुलियाँ सुन्न होने लगतीं, तो वह उन्हें शिव के धधकते हुए तीसरे नेत्र के सामने रखकर फिर गर्म कर लेता। जब कभी शिव कुछ कन्धा झुका कर बैठे होते और उनके जटाजूट के साथ साथ चन्द्रमा की कला भी नीचे को लटक आती तो वह उसे कुतूहल के साथ बड़ी देर तक चूमता रहता।

पुत्र की इन सुन्दर और मनोरम बाल-क्रीड़ाओं को देखते हुए शिव और पार्वती को यह ही सुध न रही कि दिन और रात किस प्रकार बीतते चले गये। वह कुमार इस प्रकार की लीलाएँ करता हुआ छः दिन में ही पूर्ण बुद्धिमान और युवा हो गया। छः दिन में ही उसे सब शास्त्रों और शस्त्र विद्याओं का पूरा ज्ञान हो गया।

बारहवाँ सर्ग

जैसे प्यास से व्याकुल होने पर चातक मेघ की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार तारकासुर के उपद्रवों से दुःखी होकर सब देवताओं के साथ देवराज इन्द्र भी महादेव के पास जा पहुँचे। तारकासुर का भय इतना अधिक फैला हुआ था कि देवताओं को आकाश में आते-जाते भय मालूम होता था, इसलिये जैसे-तैसे वे बादलों के बीच में छिपते हुए कैलाश पर्वत पर जा उतरे। यह पर्वत शिव और पार्वती की चरण धूलि के कारण अत्यन्त पवित्र हो गया था। ग्रीष्मऋतु में जैसे पिपासाकुल पथिक पानी की ओर भागता है, उसी प्रकार इन्द्र विमान से उतर कर महादेव के भवन की ओर तेजी से चले। कैलाश पर्वत स्फटिकों से बना हुआ था। उनमें इन्द्र को अपने अनगिनत प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहे थे। चलते-चलते इन्द्र महादेव के भवन के द्वार पर पहुँच गये। यहाँ रंग-बिरंगे रत्न द्वार में जड़े हुए थे और हाथ में विशाल स्वर्ण दंड लिये नन्दी द्वार पर बैठे थे। इन्द्र को देखकर नन्दी ने अपना स्वर्ण दंड एक ओर रख दिया और बड़े आदर से आगे बढ़कर इन्द्र का स्वागत किया और उसके बाद स्वयं भवन के अन्दर जाकर महादेव को इन्द्र के आगमन की सूचना दी। महादेव ने भौहों के संकेत से इन्द्र को अन्दर ले आने का

आदेश दिया और देवताओं समेत इन्द्र महादेव के सम्मुख जा पहुँचे ।

महादेव का सभा मंडप रत्नों से जटित था। वहां चंडी, भृङ्गी इत्यादि अनेक गण बैठे थे। उनके आकार प्रकार एक से एक अद्भुत थे । शिव के सिर पर जटाजूट में अनेक नाग लिपटे हुए थे । उनके फनों पर देदीप्यमान मणियां जगमगा रही थीं, जिससे वह जटाजूट सुमेरु पर्वत के शिखर के समान प्रतीत होता था। जटा के अगले भाग में ऊँची-ऊँची तरंगें उछालती हुई गंगा शरद्ऋतु के मेघों के समान श्वेत झाग उठाती हुई बह रही थी; मानो पार्वती की हँसी उड़ा रही हो कि तुम तो शिव की गोदी में ही बैठी हो और मैं उनके शिर के ऊपर हूँ । शिव के मस्तक पर सुशोभित चन्द्रमा की कान्ति जब गंगा की तरंगों में पड़ती थी, तो उससे चन्द्रमा के अनगिनत प्रतिबिम्ब बन कर चमकने लगते थे। शिव के मस्तक पर प्रलय की अग्नि के समान शिव का वह तीसरा नेत्र चमक रहा था, जिसमें कामदेव जलकर राख हो गया था। इस नेत्र की चमक के सामने सूर्य और चन्द्रमा की चमक फीकी पड़ जाती थी । उन्होंने अपने कानों में दो बहुमूल्य रत्नजटित कुंडल पहने हुए थे, जो सूर्य और चन्द्रमा की भाँति जगमगा रहे थे। उनका कंठ चमकीले नीले रंग का था। नीलम का हार पहन लेने पर पार्वती के कंठ की आभा जिस प्रकार की हो जाती है, वैसी ही महादेव के कंठ की दिखाई पड़ रही थी। अपने शरीर पर उन्होंने मृत देव और दानवों की चिता की

राख पोती हुई थी और उसके ऊपर विशाल हाथी की खाल धारण की हुई थी, जिससे वह ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो काले बादलों से आच्छादित हिमालय का कोई हिम शिखर हो। उनके हाथ में कपाल का पात्र था, गले में अस्थियों की माला थी और दूसरे हाथ में उन्होंने अपना भयंकर त्रिशूल उठाया हुआ था। यद्यपि महादेव का वेश ऐसा बेढंगा था, फिर भी वैकुण्ठ निवासी विष्णु उनकी सेवा में लगे हुए थे। महादेव ने कंठ में नरमुण्डों की एक पुरानी माला पहनी हुई थी, जो सिर पर विद्यमान चन्द्रमा से झरने वाले अमृत के कारण जीवित-सी प्रतीत हो रही थी। महादेव की गोदी में नई स्वर्णलता के समान पार्वती बैठी थी और देखने से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे शरद्ऋतु के मेघ में बिजली चमक रही हो। एक हाथ में महादेव ने अपना विशाल धनुष पिनाक धारण किया हुआ था जिससे उन्होंने अन्धक नाम के दैत्य को मार डाला था और अन्य कई बड़े-बड़े दानवों की स्त्रियों को विधवा कर दिया था। इस धनुष को महादेव के सिवाय और कोई उठा भी नहीं सकता था। वे बहुमूल्य मोती और रत्नों से जटित रंग-बिरंगे सिंहासन पर बैठे थे। पैरों के नीचे एक सोने का पीढ़ा रखा हुआ था। दो गण उन पर चन्द्रमा की किरणों के समान शुभ्र चँवर डुला रहे थे। उस समय वह आनन्द में मग्न होकर कुमार की शस्त्र विद्या का अभ्यास देख रहे थे और ऐसा प्रतीत होता था मानो कैलाश पर्वत उनकी आरती उतार रहा हो।

महादेव के इतने ऐश्वर्य को देखकर कुछ देर के लिये इन्द्र का मन भी चचल हो उठा। इन्द्र अपने हजार नेत्रो से शिव को देखने लगे। अपने विकसित कमल वन के समान नयनो से शिव को देखते-देखते इन्द्र को रोमाच हो आया और उनका शरीर नवमजरियो से लदे हुए आम्र वृक्ष के समान हो उठा। शिव को देखकर इन्द्र प्रसन्न तो बहुत हुए, परन्तु साथ ही उन्हे यह डर लगा कि कही शची यह सन्देह न करने लगे कि उन्हे किसी अन्य सुन्दरी को देख कर रोमाच हो आया है। जब उन्होने महादेव के सम्मुख शस्त्रधारी कुमार को देखा, जो सुमेरु के समान बलशाली था, तो उन्हे यह आशा हो गई कि अब हम तारकासुर को परास्त कर सकेंगे।

नन्दी ने अपना सोने का डडा एक ओर रख दिया और महादेव के निकट जाकर हाथ जोड़कर निवेदन किया—"हे नीलकठ यह देवराज इन्द्र आपको प्रणाम करने की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ पर खड़े है। कृपा करके उनकी ओर भी दृष्टि डाल लीजिये।"

महादेव ने प्रेम के साथ देवराज इन्द्र की ओर अपनी अमृत की धार सी बरसाती हुई कृपादृष्टि डाली। इन्द्र ने सिर झुकाकर महादेव को प्रणाम किया और उनके सिर पर रखे हुए बहुत से पारिजात के फूल आस-पास बिखर गये। अन्य देवताओं ने भी महादेव के चरणों के पास भूमि पर मस्तक छुआकर प्रणाम किया। महादेव ने इन्द्र के बैठने के लिये एक आसन मँगाया और इन्द्र बहुत प्रसन्नता पूर्वक उस

आसन पर बैठ गये। तब महादेव ने सब देवताओं पर बारी-बारी से अपनी सस्मित दृष्टि डाली और इस प्रकार उनका सम्मान किया। वे सब भी सामने भूमि पर ही बैठ गये।

दैत्यो से परास्त हो जाने के कारण देवताओं के मुख की कान्ति मलिन हो गई थी। वे श्रान्त और उदास दिखाई पड़ रहे थे। उन्हे देखकर महादेव का हृदय करुणा से पिघल गया और वे पूछने लगे—

"यह क्या बात है कि आप अनन्त पराक्रमी और शस्त्र-धारी होने पर भी इस समय खिन्न दिखाई पड रहे है ? इस समय आपके मुख पाले से मारे हुए कमलो के समान कान्ति-हीन क्यो दीख रहे है ? आपने इतनी विशाल पुण्य राशि एकत्र करके स्वर्ग प्राप्त किया था; क्या अब वह पुण्य भी समाप्त हो गया है जो आप स्वर्ग से बाहर चले आये हे ? आप लोग अपने प्रभुत्व के चिरकाल तक धारण किये गये चिन्ह स्वरूप उस स्वर्ग को न छोड़िये। आप लोग इतने स्वाभि-मानी होते हुए भी देवताओं के निवास स्थान स्वर्ग को छोड़ कर सामान्य मनुष्यों की भांति पृथ्वी तल पर क्यों फिर रहे है ? वह अत्यन्त सुन्दर अद्भुत देवताओ का निवास स्वर्ग आपके हाथ से अचानक ही कैसे निकल गया ? क्या उसी प्रकार जैसे चिरकाल से एकत्र किया गया पुण्य किसी एक पाप करने से ही नष्ट हो जाता है ? ग्रीष्मऋतु मे सूख जाने वाले सरोवर की भाति आपके हृदय का वह विशाल धैर्य भी सूख कर कहां समाप्त हो गया ? आप सब इस समय बेचैन

होकर एक साथ यहा आये है । यह तो बताइये कि कही आपने उस त्रिलोक विजयी महाबली तारकासुर से तो लडाई मोल नही ले ली ? उस महाबली राक्षस को तो केवल एक मैं ही परास्त कर सकता हूँ क्योकि वन की आग को महामेघ के अतिरिक्त और कौन बुझा सकता है ?"

जब इतना कहकर महादेव चुप रह गये तो इन्द्र तथा अन्य सभी देवताओ की आँखो मे आनन्द के आँसू भर आये और आश्वासन मिल जाने से उनके मुखों पर फिर चमक आ गई। अवसर पाकर इन्द्र महादेव से कहने लगे—

"हे महादेव आपने अपने अविनश्वर ज्ञान प्रदीप के द्वारा अज्ञान अधकार का नाश कर दिया है । जो भी कुछ हुआ है, या हो रहा है और भविष्य मे होगा, आप उस सबको भली-भाँति जानते है तो क्या फिर आपको इतना भी मालूम न होगा कि अपने प्रचड बाहुबल से देवताओं के शत्रु तारक ने हमें स्वर्ग से निकाल कर उस पर अपना अधिकार कर लिया है । उसने ब्रह्मा से अमोघ वरदान प्राप्त किया है और अब वह शीघ्र ही तीनो लोको को विजय कर लेना चाहता है। अब वह अपने बाहुबल के अभिमान में मुझे तथा अन्य सब देवताओ को कुछ गिनता ही नही । पहले हम पितामह ब्रह्मा के पास गये थे । उन्होने यह बतलाया था कि महादेव का पुत्र ही इस दैत्य को सेनापति बनकर युद्ध मे मारेगा । तब से लेकर आज तक ये सब देवता उससे पराजित होने की कसक को सहते आ रहे है और हृदय के अन्दर शूल के समान चुभने

वाली उसकी आज्ञाओं का पालन कर रहे है। जिस प्रकार ग्रीष्मऋतु मे मुरझाये हुए पेड़-पौधों को नये मेघ आकर जीवन प्रदान करते है, उसी प्रकार आप भी इस पुत्र को हमारा सेनापति बनने का आदेश दीजिये। यह त्रिलोकी की राजलक्ष्मी के हृदय मे काटे के समान चुभे हुए उस महान असुर तारक को जड़ से निकाल लेगे और युद्ध मे हमारे सम्मुख रह कर हमारे कष्टों को समाप्त करेगे। हे नाथ, आप ऐसा आदेश दीजिये कि जब महासमर मे आपके इन कुमार के शस्त्रों से असुरो के सिर कट-कट कर गिरे, तब उनकी पत्नियों के विलाप से दशों दिशाये गूजने लगें। जब आपकी तरह कुमार उस तारकासुर को युद्ध क्षेत्र मे फिरने वाले मांस-भोजी पशुओं का आहार बना देंगे, तब ये देवता तारकासुर द्वारा बन्दी बनाई गई सुर बालाओं की वेणियों को जाकर खोलेगे।"

इन्द्र के इस कथन को सुनकर महादेव को तारकासुर के कारनामों पर क्रोध हो आया और देवताओं के ऊपर उन्हें दया आगई और वे कहने लगे : "हे इन्द्र आदि देवताओ, आप मेरी बात सुनिये। अब मैं अपने पुत्र समेत तुम्हारा कार्य सिद्ध करने के लिये तैयार हो गया हूँ। सयम का व्रत लिये होने पर भी मैंने गिरिराज कुमारी से विवाह इसलिये किया था कि उससे वह पुत्र उत्पन्न हो, जो तारकासुर का वध करे। इसलिये आप इस कुमार को अपना सेनापति बनाइये और

तारकासुर को मारकर यह कुमार इन्द्र के साथ ही स्वर्गलोक में निवास करे।"

इतना कहकर महादेव ने अपने पुत्र को आदेश दिया—"वत्स, जाओ और युद्ध मे देवताओं के शत्रु तारकासुर का संहार करो।" कुमार तो पहले से ही घोर युद्ध के लिये वैसे ही उत्सुक था, जैसे लोग महोत्सव के लिये उत्सुक होते है।

कुमार ने सिर झुका कर महादेव के आदेश को स्वीकार कर लिया। पितृभक्त पुत्रो का परम धर्म यही है। जब महादेव अपने पुत्र को असुरों के साथ युद्ध करने की विधि समझाने लगे तो पुत्र के पराक्रम को देखकर पार्वती प्रसन्न हो उठी। पुत्र की वीरता को देखकर किस वीर माता को आनन्द नहीं होता ?

उस वीर कुमार को प्राप्त करके इन्द्र का हृदय आनन्द से भर उठा। उन्हे मालूम था कि यह कुमार बलवान शत्रुओं का वध कर देगे, जिससे रोते-रोते उनकी स्त्रियों की आँखों का अंजन पुछ जायगा। अपनी इच्छा पूरी हो जाने पर किसे हर्ष नही होता ?

तेरहवाँ सर्ग

प्रस्थान के समय युद्धोचित वेश पहन कर देवताओं के सम्मुख चलने से पूर्व कुमार ने तीनों लोको के स्वामी महादेव के चरणों मे सिर झुका कर नमस्कार किया। महादेव ने उसे ऊपर उठाते हुए उसका मस्तक चूमा और उसे यह आशीर्वाद देकर कि "वत्स, सग्राम मे शत्रु को मारकर इन्द्र को फिर उसके आसन पर प्रतिष्ठित करो", उसका उत्साह बढ़ाया। उसके पश्चात् कुमार ने और भी अधिक सिर झुका कर अपनी माता के चरणों मे नमस्कार किया। पार्वती के नयनों से जो हर्ष के आंसू बह-बह कर कुमार के सिर पर टपक पड़े, उनसे ही मानो कुमार का सेनापति पद पर अभिषेक होगया। पार्वती ने कुमार को उठा कर खूब जोर से छाती से लगा लिया और उसका मस्तक चूम कर बोली—"तुम जाओ और शत्रु को जीत कर सफलता प्राप्त करो, जिससे मै वीर माता कहलाऊँ।"

अपने माता-पिता से भक्तिपूर्वक आज्ञा लेकर कुमार महाभयकर दैत्य तारकासुर को मारने और समरोत्सव मनाने के लिये स्वर्ग की ओर चल पड़े। महादेव तथा पार्वती को प्रणाम करके और उनकी प्रदक्षिणा करके इन्द्र तथा अन्य देवता भी कुमार के पीछे-पीछे चल पड़े। जब वे सब देवता

एक साथ मिलकर अपने देदीप्यमान मुकुट मंडलों समेत आकाश मे जा रहे थे, तो आकाश ऐसा सुशोभित हो उठा जैसे दिन मे ही बड़े-बड़े और चमकीले तारे निकल आये हों। उन देवताओ के मध्य में चलते हुए कुमार की कान्ति उन सब की अपेक्षा बहुत अधिक थी और ऐसा प्रतीत होता था मानो नक्षत्र, तारों और ग्रह मडलो के बीच चन्द्रमा चला जा रहा हो। इन्द्र इत्यादि वे सब देवता महादेव के पुत्र के साथ क्षण भर में ही नक्षत्र-पथ को पार करके अपने लोक स्वर्ग मे पहुँच गये। तारकासुर के भय से बहुत काल तक वे स्वर्ग में नही आ सके थे; इसलिये अब भी वे एकाएक स्वर्ग मे प्रविष्ट न हो सके और कुछ देर तक सबके सब ठिठक कर बाहर ही खड़े रहे।

"तुम आगे चलो, मैं आगे नही चलता, मै आगे थोड़े ही आ रहा था, आगे तो तुम चल रहे थे," इसप्रकार स्वर्ग मे घुसने से पहले देवता लोग डर के मारे आपस मे विवाद करने लगे। बहुत दिन पश्चात् स्वर्ग को देखने के कारण उनकी आंखें प्रसन्नता से भर उठी थी, परन्तु शत्रु के भय से कातर होने के कारण उनकी दृष्टि कुमार के मुख-कमल पर ही जाकर ठहरी। उस समय कुमार का मुखचन्द्र विनोदपूर्ण हँसी से भर उठा। वह बढ़कर सबके आगे हो गये और तारकासुर के आगमन की आशा करते हुए उन्होने देवताओं से कहा;—"आप लोग डरिये नही, अब अविलम्ब स्वर्ग में प्रवेश कीजिये। इस समय कितना अच्छा हो यदि वह

बलशाली असुर यहां मेरे सामने आ जाय ! आप तो पहले उसे देख चुके है, पर मैंने तो उसे देखा भी नहीं। उसकी भुजाएं स्वर्गलोक की राजलक्ष्मी के बाल खींचने के लिये मचलती रहती है। आज मेरे ये बाण अविलम्ब ही उसके रक्तपान का आनन्द लेकर क्रीड़ा करे। और मेरी यह सेल स्वर्गलोक की लक्ष्मी का विपत्ति से उद्धार करने के लिये तारकासुर का सिर काट कर आपको आनन्दित करे।"

महादेव के पुत्र कुमार के दैत्य-वध के लिये उत्सुकता से भरे इन वचनों को सुनकर सब देवताओं के मुख प्रसन्नता से खिल उठे। इन्द्र और कुमार ने परस्पर वस्त्र बदल कर आपस में मित्रता को पक्का कर लिया। देवताओं में सबसे वृद्ध ब्रह्मा थे। कुमार को देखकर उन्हे बड़ा आनन्द हुआ। उनकी आँखो में आँसू छलक आये और उन्होंने कुमार के छहों मस्तकों का चुम्बन किया। गन्धर्वों, विद्याधरों और सिद्धों के दलों ने "शाबाश शाबाश, आपकी जय हो, आपकी जय हो" इत्यादि नारे लगा कर कुमार के आनन्द को चौगुना कर दिया। नारद आदि दिव्य ऋषियों ने आकर शत्रु को जीतने के लिये निकले कुमार के सुनहले वस्त्रों से अपने वल्कल वस्त्र बदल कर उससे अपनी मित्रता और दृढ़ कर ली।

तब शक्तिवर कुमार के बल पर देवता लोग निर्भय होकर स्वर्ग में उसी प्रकार प्रविष्ट हुए जैसे गजराज के आश्रय में छोटे-छोटे हाथी वन में प्रविष्ट होते हैं। जिस प्रकार त्रिपुर को जलाने के लिये उद्यत महादेव के चारों ओर

उनके असंख्य गण एकत्रित हो गये थे, इसी प्रकार तारकासुर के वध के लिये उद्यत कुमार के चारों ओर देवता लोग एकत्र हो गये। जब वे स्वर्ग में प्रविष्ट हुए तो उन्हें सामने आकाश गंगा दिखाई पड़ी, जिसका जल पहले कभी जल में स्नान करने वाली देवांगनाओं के अंगों से छूटे अंगराग से रंगीन हो जाया करता था। इस आकाश-गंगा के जल में क्रीड़ा करते समय दिग्गज अपनी सूंडों से बार-बार पानी को हिलाया करते थे, जिससे इतनी बड़ी-बड़ी तरंगे उठती थी कि आकाश गंगा के किनारों पर खड़े हुए वृक्षों की जड़ों में अपने-आप ही पानी पहुँच जाया करता था। यहाँ पहले देव कन्याएँ आकर सुनहली बालू से खेल किया करती थी। उनकी बनाई हुई वे छोटी-छोटी वेदियाँ अभी तक बनी हुई थी और उनमें जहाँ-तहाँ रत्न जगमगा रहे थे। यहाँ सुगन्ध के लोभ में भ्रमर सदा गुँजार करते रहते थे और सुनहले हंसों की पक्तियाँ किलोलें किया करती थी। यहाँ सदा ऐसे स्वर्ण-कमल खिले रहते थे, जिनमें से पराग झरा करता था और उससे आकाश गंगा का जल भी रंगीन हो उठता था। इस नदी के किनारे देवताओं की पत्नियाँ मनोविनोद के लिये आकर बैठ जाया करती थी। तरंगों में पड़ते हुए उनके प्रतिबिम्ब ऐसे सुन्दर दिखाई पड़ते थे कि उस ओर से गुजरने वाले पथिकों का चित्त आनन्दित हो उठता था।

बहुत दिनों बाद उस नदी को देखकर इन्द्र का मन बहुत आनन्दित हुआ और उसने आगे बढ़ कर आदर के साथ कुमार

को वह नदी दिखाई। उस नदी को देख कर कुमार बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बहुत विनय के साथ उस नदी के पास जाकर सिर झुका कर प्रणाम किया। तभी मंदाकिनी का वह सुखद मन्द पवन चलने लगा, जिससे खिले हुए कमल हिलने लगते हैं; जो तरंगों से क्रीड़ा किया करता है और जो अपने स्पर्श से परिश्रान्त व्यक्ति के पसीने को सुखा डालता है।

आकाश गंगा से आगे चलकर कुमार ने इन्द्र के प्रमोदवन नन्दन को देखा। यहाँ पर शाल के वृक्ष तोड़ दिये गये थे या उखाड़ दिये गये थे। तारकासुर ने ही इस वन को ऐसा शोभाहीन कर दिया है यह सोच कर क्रोध से कुमार का मुख तमतमा उठा। कुछ और आगे चलकर उन्होंने त्रिलोकी की अनुपम नगरी अमरावती को देखा। वहां के क्रीड़ा उद्यान उजाड़ दिये गये थे। बड़े-बड़े महल तोड़ दिये गये थे। उस ओर विमान का ले जाना भी कठिन प्रतीत होता था। उस उजड़ी हुई शोभाहीन नगरी को देखकर कुमार को उसी प्रकार दया आई जैसे किसी नपुंसक की पत्नी को देखकर दया आये। देवताओं की राजधानी अमरावती की उस दुर्दशा को देखकर तारकासुर के दुष्कर्मों पर कुमार को बहुत क्रोध हुआ और वह युद्ध के लिए अधीर होकर अमरावती में घुसे। नगर के अन्दर स्फटिक से बने हुए महलों की पंक्तियां दैत्यों के हाथियों की टक्कर और दांतों की चोट से टूट-फूट गई थी। जहाँ-तहाँ बड़े-बड़े साँपों की केंचुलियाँ पड़ी हुई थी। उस उजड़ी हुई नगरी को देखकर कुमार को बड़ा दु:ख हुआ।

देवताओं के घरों की बावड़ियों में से स्वर्ण कमल उखाड़ लिये गये थे। उनका जल दिग्गजों के मद से मलिन हो गया था। सोने के हंस वहाँ से उड़ गये थे और मरकत से बनी हुई बड़ी-बड़ी शिलाएँ टूट-फूट गई थी। उनमें से बीच-बीच में घास उगने लगी थी। शत्रु द्वारा की गई नगर की इस दुर्दशा को देख कर कुमार का मन दुःख से भारी हो गया।

उसके पश्चात् इन्द्र कुमार को अपने वैजयन्त नाम के महल में ले गये। इस महल की सुनहली दीवारें तारकासुर के हाथियों ने अपने दांतों की टक्कर मार-मार कर तोड़ दी थी। और अब उन रत्नजटित दीवारों पर मकड़ियों ने जाले तान दिये थे। इन्द्र आगे आगे चलने लगे। उनके पीछे कुमार थे और उनके पीछे सब देवता चल रहे थे। वे सब विभिन्न प्रकार के पत्थरों द्वारा बनाये गये उस महल मे टूटी-फूटी सीढ़ियों पर होकर चढ़े। अन्त में वे सब उस सुन्दर प्रासाद में पहुँचे, जहाँ कल्पवृक्ष स्वाभाविक वन्दनवार बनकर खड़ा था। सब ओर पारिजात के फूल बिखरे हुए थे। जहाँ कभी दिव्य ऋषियों ने स्वस्तिवाचन किया था और किसी समय जहाँ एक से एक सुन्दर अप्सराएँ रहा करती थी। वहाँ देव और दानवों के आदि पुरुष महर्षि कश्यप विद्यमान थे। कुमार ने उनकी प्रदक्षिणा करके हाथ जोड़कर अपने छहों सिरों से झुक कर नमस्कार किया। उसके बाद कुमार ने कश्यप की पत्नी देवमाता अदिति के चरणों में भी प्रणाम किया।

महर्षि कश्यप ने और देवमाता अदिति ने कुमार को

आशीर्वाद दिया—"तुम इस प्रचंड त्रिलोक-विजयाभिलाषी तारक को युद्ध में परास्त करो।" और इस प्रकार उनका उत्साह वर्धन किया। अदिति के पास रहने वाली अन्य देवांगनाएँ भी कुमार के दर्शन के लिए आईं और उन सब को भी कुमार ने पैरों में झुक कर नमस्कार किया, जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कुमार को आशीर्वाद दिये। इसी प्रकार पुलोम की पुत्री और इन्द्र की पत्नी शची को भी कुमार ने नमस्कार किया। कुमार ने महात्मा कश्यप की अन्य सातों पत्नियों को भी विनयपूर्वक प्रणाम किया और उन्होंने प्रणाम से पहले ही उन्हें विजयी होने का आशीर्वाद दिया।

इसके बाद इन्द्र इत्यादि सब देवताओं ने प्रसन्न मन से कुमार को सेनापति पद पर अभिषिक्त कर दिया। जब अमित बलशाली कुमार देवसेना के अध्यक्ष बन गये, तो देवताओं को यह विश्वास हो गया कि हम शत्रु को जीत लेंगे और उनका सारा शोक जाता रहा।

चौदहवां सर्ग

कुमार युद्ध के लिये उत्सुक थे। उन्होंने तारकासुर को मारने के लिये देवताओं को तुरन्त तैयार होने का आदेश दिया। कुमार अपने आप 'विजित्वर' नाम के रथ पर सवार हो गये, जिसकी गति मन के समान तीव्र थी और जो अवश्य ही विजय प्राप्त कराता था। उन्होंने धनुष और अपनी सेल (शक्ति) धारण की हुई थी। उस समय किसी ने उनके सिर पर सुनहरा छत्र लगा दिया, जो स्वर्ग लोक की लक्ष्मी की विपत्ति से रक्षा करने वाला था और असुरों की सम्पत्ति के लिये कष्ट-दायक था। उनके ऊपर शरद्ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान धवल चंवर डुलाये जा रहे थे और किन्नर, सिद्ध तथा चारण लोग मुक्तकंठ से उनके स्तुति के गीत गा रहे थे। उनके पीछे-पीछे स्फटिक के पर्वत के समान ऐरावत पर चढ़े हुए इन्द्र युद्धोचित वेश बनाये, हाथ में पर्वतों के पंख काटने वाला वज्र उठाये आगे बढ़े। इन्द्र के पीछे मेढ़े पर बैठे हुए अग्निदेव चले। क्रोध के मारे उनका तेज और भी अधिक हो गया था। उनके हाथ में दहकता हुआ दंड था। उनका मेढा पर्वत के समान विशाल और मस्त था। उनके पीछे यमराज चले। वह नीलम के पहाड़ के समान विशालकाय भैंसे पर बैठे हुए थे, जो अपने सींगों से बड़े-बड़े बादलों को तोड़ता-फोड़ता चल रहा

था। उनके हाथ में भयंकर दंड था। यमराज के पीछे नैऋत नाम का राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध होकर तारकासुर से घोर युद्ध करने के लिये चला। क्रोध के कारण उसका मुख बहुत भयंकर हो उठा था और वह एक प्रेत के ऊपर सवार था। मगरमच्छ के ऊपर बैठ कर अपना अचूक पाश लिये हुए वरुण चले। उनका वाहन मगरमच्छ वर्षाकाल के नये मेघ के समान काला और भयावह दिखाई पड़ रहा था। हरिण पर सवार होकर पवन देव कुमार के पीछे-पीछे युद्ध के लिये आगे बढ़े। उनके हरिण की गति पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र एक समान थी। अपनी भयंकर गदा लेकर कुबेर युद्ध के लिये कुमार के साथ चले। इस गदा से उन्होंने अनेक शत्रुओं का नाश किया था। वह एक पालकी में बैठे हुए थे और उसे कई मनुष्य उठा कर चल रहे थे। अपने जटाजूट में बड़े-बड़े नागों को लपेटे, जलते हुए त्रिशूल हाथ में लिये, कैलाश के समान सफ़ेद बैल पर चढ़े ग्यारहों रुद्र कुमार के पीछे-पीछे चले। और भी कितने ही देवता इस समरोत्सव में आनन्द लेने के लिये अपने बड़े-बड़े वाहनों पर चढ़कर हँसते और आनन्द मनाते कुमार के पीछे हो लिये।

महादेव के पुत्र कुमार देवताओं की उस विशाल सेना को साथ लेकर आगे बढ़े। चारों ओर सुनहले ध्वजदंड ऊपर उठे हुए थे। तरह-तरह के छत्र चमक रहे थे। चलते हुए रथों का बहुत भयंकर शोर हो रहा था। हाथियों के गलों में बँधे हुए घंटे जोर-जोर से बज रहे थे। तरह-तरह के शस्त्र धूप में

चमक रहे थे, जिससे आकाश जगमगा-सा उठा था। जब वह देवताओं की सेना बड़े-बड़े झंडे उठाये कोलाहल करती और उछलती-कूदती चली तो पृथ्वीतल, आकाश और दशों दिशाएं एक जैसी ही दिखाई पड़ने लगी। इनमें कोई भेद न रहा। उन्होंने जो नगाड़े बजाये, उनसे सम्पूर्ण आकाश भर उठा और दिगंतों से लौट कर आती हुई उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी, जिससे असुरों की राजलक्ष्मी कांप उठी। उन नगाड़ों का शब्द इतना भयंकर हुआ, मानो मथा जा रहा समुद्र गर्जन-तर्जन कर रहा हो। उस शब्द को सुनकर असुर नारियों के गर्भ गिर गये और धूल से भरा हुआ आकाश ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो बेचैन होकर रो पड़ा हो। जब सेना चली तो पहले तो रास्ते की मिट्टी रथों के पहियों से उखड़ी, फिर घोड़ों के खुरो से टूटकर वह बारीक हो गई। उसके बाद हाथियों ने अपने कान हिला-हिला कर उसे सब ओर फैला दिया। लहराती हुई ध्वजाओं से वह ऊपर उठी और अन्त में वायु उसे आकाश में उड़ा ले गया। इस प्रकार सुमेरु की वह धूल रथ में जुते घोड़ों के खुरों से पिस-पिस कर वायु से उड़कर सब दिगन्तों में भर गई और चमकने लगी। सेना के आगे-पीछे, ऊपर और चारो ओर वायु में उड़ती हुई वह सुनहली धूल ऐसी सुन्दर प्रतीत होती थी कि उसके सामने उदित होते हुए सूर्य की कान्ति भी फीकी पड़ गई। उस सुनहली धूल के कारण ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे असमय में ही संध्या के घने रंगीन मेघ आकाश में घिर आये हों। सुमेरु पर्वत की भूमि चमकीले स्वर्ण से बनी

हुई थी। उसमें जब सेना के हाथियों ने अपने प्रतिबिम्ब देखे तो उन्हें यह भ्रम होने लगा कि ये हाथी रसातल में से निकल कर आ रहे हैं और वे क्रुद्ध होकर उन पर दांतों से प्रहार करने लगे। इस प्रकार युद्ध के समुद्र में क्रीड़ा करने के लिये उत्सुक वह देवसेना कोलाहल से पर्वत की गुफाओं को कपाती हुई तेजी से सुमेरु पर्वत से नीचे उतरी।

यद्यपि उस विशाल सेना का इतना भयकर कोलाहल हुआ; बड़े-बड़े घटों की आवाज होती रही और गजराज चिंघाड़ते रहे, फिर भी सुमेरु पर्वत की गुफाओं मे लेटे हुए सिह सोते ही रहे। उनकी नीद नही टूटी। अनेक भेरियो की जोरदार आवाज हो रही थी, जो गुफाओ मे गूँज कर और भी भयकर हो जाती थी। फिर भी सिह विचलित नही हुए और उन्होने सिद्ध कर दिया कि वे सचमुच मृगराज हैं। सुमेरु पर्वत के शिखरों को तोड़-फोड़ कर चलती हुई देवताओं की सेना के उस शब्द को सुनकर केसरी और भी अधिक मद से भर उठे। देवताओं की सेना के भय से हरिण दूर-दूर तो भाग गये, परन्तु सिह अपनी-अपनी गुफाओं से बाहर आकर निःशंक भाव से खड़े हो गये।

देवताओं के सैनिक जब सुमेरु पर्वत के निचले भाग में पहुँचे, तो उन्हें अमरावती के निवासी उत्सुकता के साथ देख रहे थे। सुमेरु पर्वत की पीली, सफेद, लाल और काली चट्टानों से उड़ी हुई धूल से भरकर आकाश ऐसा सुन्दर हो उठा मानो बिना प्रयत्न के ही वह रत्नजटित गन्धर्वनगर बन गया हो।

सेना की हलचल से उत्पन्न हुआ वह भयानक शब्द क्षुब्ध महा-समुद्र के गर्जन के समान गभीर हो उठा, जिसे सुनकर कानों के पर्दे फटने-से लगे। बड़े-बड़े गजराजों की चिघाड़ और घोड़ो की हिनहिनाहट तथा रथों की आवाज से ऐसा प्रचड शब्द हो रहा था कि उसमे नगाड़ों की आवाज बिल्कुल दब गई। कुछ ही देर बाद देवसेना के चलने से उठी वह धूल असुरों के अन्तःपुर की रानियों के बालों, आँखों की पलकों, व स्तनो और ध्वजाओं, हाथियों, रथों और घोड़ों पर जा-जाकर पड़ने लगी। सेना से उड़ी हुई उस धूल से आकाश आच्छादित हो गया, जिससे सूर्य की किरणों का आना बन्द हो गया। इससे बादलों के भ्रम मे हंस तो मानसरोवर को उड़ चले और मोर आनन्दित होकर नाचने लगे। सेना के चलने से उड़ी वह धुल आकाश में नई मेघमाला के समान दिखाई पड़ने लगी और उसमें देवताओं की सुनहली ध्वजाए चमकती हुई विद्युत्-सी जान पड़ने लगी। वह धूल पृथ्वी और आकाश के मध्य ऐसी घनी छाई हुई थी कि लोग इसी सन्देह में पड़ गये कि यह धूल नीचे से ऊपर को उठ रही है अथवा ऊपर से नीचे को आ रही है। उस धूल के कारण न तो ऊपर कुछ दिखाई पड़ता था न नीचे, न आगे न पीछे, न दायें और न बायें। धूलकणों के अत्यधिक भर जाने के कारण सब प्राणियों को दीखना बन्द हो गया।

सेना में अनेक प्रकार के वाद्य इतने जोर-जोर से बज रहे थे कि उन्हें सुन-सुनकर दिग्गजों का मद सूख गया। वाद्यो

की यह ध्वनि विमानों के छेदों से टकराकर कई गुनी हो उठती थी, जिससे ऐसा लगने लगता था मानो आकाश ही भयंकर स्वर में गरज रहा है। देवताओं की यह विशाल सेना इतनी बड़ी थी कि पहले तो वह सारी पृथ्वी पर भर गई। उसके बाद वह सारे आकाश में छा गई। जब वहां भी स्थान न बचा तो वह सदा यह सोचकर विकल हो उठी कि अब और कहां जाय ? प्रचंड मद बहाते हुए हाथियों के गर्जन से और उच्च स्वर में हिनहिनाते हुए घोड़ों के तथा चलते हुए रथों के शब्द से सारे संसार का दम घुटने सा लगा। दशों दिशाएं कोलाहल से भर उठीं। हाथियों का मद इतना बहा, जिससे नदियों में बाढ़ आगई : परन्तु तभी उनके ऊपर इतनी धूल आ-आकर पड़ी कि सब ओर कीचड़ ही कीचड़ हो गया; और जब उस कीचड़ मे से असंख्य रथ चले तो वह सारा कीचड़ देखते-देखते सूख गया।

जो प्रदेश नीचे थे वे भरकर बराबर हो गये और जो प्रदेश ऊँचे थे वे भी चलते हुए घोड़ों के खुरों, रथों और हाथियो ने सब ओर से समतल कर दिये। जिस प्रकार किसी शोर मचाती हुई वस्त्रहीन रजस्वला स्त्री को देखकर सज्जन लोग मुँह फेर लेते हैं उसी प्रकार रज (धूल) से भरी हुई दिशाओं को देखकर सूर्य ने घने अंधकार मे अपने-आपको छिपा लिया। बड़े-बड़े गजराज आकाश में इस प्रकार चल रहे थे, मानो भयंकर आंधी में विशाल पर्वत आकाश मे उड़ गये हों और भूमि पर रथ ऐसे चल रहे थे मानो बादलों का समूह

पृथ्वी पर उतर आया हो। घोर कोलाहल करती हुई वह विशाल सेना निरन्तर अधिक बढ़ती जाने लगी। ऐसा प्रतीत होता था मानो असुरों के संहार के लिये महाप्रलय का समुद्र उमड़ रहा हो।

पन्द्रहवां सर्ग

देवताओं के शत्रु असुरों के नगर में यह शोर मच गया कि इन्द्र महादेव के पुत्र कुमार को सेनापति बनाकर युद्ध करने के लिये विशाल सेना के साथ आ रहा है। इससे असुरों के हृदय कांप उठे। जब उन्होंने यह सुना कि महादेव के पुत्र सचमुच ही देवसेना के सेनापति बनकर आ रहे हैं, तो असुरों के हृदय में बहुत देर तक खलबली मची रही। उन्होंने दैत्य-राज तारक के पास पहुँच कर हाथ जोड़कर नमस्कार करने के उपरान्त निवेदन किया कि इन्द्र कुमार के साथ सेना लिये युद्ध करने आ रहा है। इस बात को सुनकर तारक बोला—"मुझ त्रिलोक विजेता को इन्द्र पिछले इतने सारे युद्धों में तो जीत नहीं पाया; अब वह महादेव के पुत्र के बल से मुझे अवश्य जीत लेगा ?" ऐसा कहकर वह व्यंग्य की हँसी हँसने लगा। उसके बाद धीरे-धीरे उसे क्रोध चढ़ने लगा। उसके ओठ फड़कने लगे और उसने भुजबल के अभिमानी अपने सेनापतियों को तुरन्त तैयार होने का आदेश दिया। उसके हृदय में तीनों लोकों को विजय करने की इच्छा फिर नये सिरे से जाग उठी।

उसकी विशाल सेनाओं के सेनापति बहुत शीघ्र ही शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर उसके विशाल आँगन में आकर

खड़े हो गये और देखते-देखते वह सारा स्थान राजाओं से भर गया। तारक ने अपने सामने खड़े हुए अनेक सेनापति राजाओं को देखा जो युद्ध रूपी समुद्र को मथ डालने के लिये अधीर थे और विनम्रतापूर्वक तारक को नमस्कार कर रहे थे। उन राजाओं को द्वारपालों ने ला-लाकर तारकासुर के सम्मुख खड़ा कर दिया।

उसके बाद महाबली इन्द्र विजेता तारकासुर अपने विशाल रथ पर सवार हुआ। उस रथ के चलने का शब्द ऐसा भयंकर होता था, जिससे दिग्गजों का मद बहना बन्द हो जाता था और वे चिंघाड़ना बन्द कर देते थे। यह रथ समुद्र में और पर्वतों पर निर्बाध रूप से सब जगह जा सकता था। प्रलयकाल के विक्षुब्ध महासमुद्र के समान शब्द करती हुई वह दैत्य-सेना तारकासुर के पीछे-पीछे चल पड़ी। उसके चलने से इतनी धूल उड़ी कि सूर्य का प्रकाश बिलकुल छिप ही गया। सेना में इतनी पताकाएं फहरा रही थीं कि उनसे सूर्य की धूप आनी बन्द हो गई। युद्ध के लिये प्रयाण करते हुए तारकासुर की सेना के चलने से उड़ी हुई धूल जब जाकर दिग्गजों के दांतों पर पड़ी, तो वह सफेद हो उठी और जब उनके मद बहाते हुए मस्तक पर पड़ी तो वह कीचड़ बन गई। उस सेना के ज़ोर-ज़ोर से बजते हुए नगाड़ों से पहाड़ों की गुफाएँ फटने-सी लगीं। उसके कारण समुद्र में ऊँची तरंगे उठने लगीं और आकाश गंगा में एकाएक बाढ़ आ गई। दैत्यराज तारक की सेना के भयंकर शब्द से आकाश गंगा इस प्रकार आलोड़ित

हो उठी कि उसकी सैकड़ों ऊँची-ऊँची लहरें और कमल स्वर्ग के मकानों पर जा पहुँचे।

जब असुर सेना युद्ध के लिये प्रस्थान करने लगी, उस समय अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे, जिनसे यह स्पष्ट होता था कि यह सेना अगाध दु:ख के समुद्र में जाकर डूबेगी। कुछ समय बाद दैत्यों का माँस खाने को मिलेगा, इस आनन्द की कामना से गिद्धों के विशाल दल आकाश में छा गये। यहाँ तक कि उनके कारण दैत्य सेना के ऊपर सूर्य की धूप तक पहुँचनी बन्द हो गई। अत्यन्त तीव्र अन्धड़ चलने लगा, जिसके कारण छत्र और ध्वज टूट-टूट कर गिर पड़े। ऐसी धूल उड़ने लगी कि आँखों से दीखना बन्द हो गया। घोड़े, हाथी और रथ सबको उस अन्धड़ ने उलट-पलट कर दिया। तभी बड़े भयंकर डरावने नाग असुर सेना का रास्ता काट-काट कर जाने लगे। वे नाग काजल के ढेर के समान काले रंग के थे और उनके मुख से जहरीली आग की लपटें निकल रही थीं। सूर्य के चारों ओर एक काला मंडल बन गया, जैसे महाभयंकर सर्पों ने सूर्य को सब ओर से लपेट लिया हो। यह इस बात की सूचना थी कि अब तारक का अन्त आ पहुँचा है। सूर्य मंडल के सम्मुख आकर तारक का रक्तपान करने के लिये गीदड़ियों का दल अत्यन्त कर्कश स्वर में जोर-जोर से रोने लगा। दिन के समय ही असुर सेना के चारों ओर बड़े-बड़े तारे आकाश से टूट-टूट कर गिरने लगे, जिससे लोगों को यह विश्वास होने लगा कि अब

तारकासुर का नाश होने ही वाला है। आकाश में बिना बादल के ही खूब ज़ोर-ज़ोर से बिजली चमकने लगी। उसकी चमक से रह-रहकर अब दिशाएँ आलोकित होने लगीं और उसकी कड़क इतनी भयंकर थी कि लोगों के हृदय काँप-कांप उठते थे। आकाश से जलते हुए अंगारों, खून और हड्डियों की वर्षा होने लगी। और सब दिशाओं में गधे के गले के समान भूरे रंग का धुँआ भर उठा। सब ओर ऐसा प्रचण्ड कोलाहल हो रहा था, जिससे पर्वतों के शिखर टूट पड़ रहे थे और दिशाएं फटी जा रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानों काल क्रुद्ध होकर कर्णभेदी गर्जन कर रहा हो। तभी एकाएक प्रचंड भूकम्प आया जिससे बड़े-बड़े हाथी लड़खड़ा गये, घोड़े गिर पड़े और लोगों ने सम्हलने के लिये एक-दूसरे को जोर से पकड़ लिया। इस भूकम्प से समुद्र विक्षुब्ध हो उठे, पहाड़ टूट-फूट गये और सारी असुर सेना अस्तव्यस्त हो गई। उस समय तारक के सम्मुख आ आकर कुत्ते ऊपर की ओर मुँह करके सूर्य की ओर देखते हुए बहुत ही कर्णकटु स्वर में एक साथ मिलकर रोने लगे और रो-रोकर भाग जाने लगे।

परन्तु इन सब भयंकर अपशकुनों को देखने के बाद भी तारकासुर अपने युद्ध प्रयास से विमुख नहीं हुआ। उसका दुर्भाग्य उस समय प्रबल हो उठा था। समझदार लोगों ने अपशकुनों को देखकर उसे युद्ध से रोकने का यत्न किया। परन्तु वह आगे ही बढ़ता गया। हठ से विवेकहीन लोगों को हित का उपदेश प्रिय नहीं लगता। तभी सामने से आती हुई

तीव्र वायु ने उसका सुनहला राजछत्र उड़ाकर भूमि पर गिरा दिया। वह भूमिपर पड़ा हुआ छत्र ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मृत्यु ने अपना उपवास समाप्त करने के लिये बड़ा सोने का थाल अपने सामने रखा हो। उसके मुकुट में टँगे हुए मोती टूट-टूटकर भूमि पर गिरने लगे। वे ऐसे लगते थे, जैसे वह मुकुट इस बात को जानता है कि तारकासुर का सिर शीघ्र ही कटने वाला है और इसीलिये वह शोक में आँसू बहा-बहाकर रो रहा हो। उसके अनुचर बार-बार गिद्धों को उड़ाते थे, परन्तु वे जैसे बार-बार तारक को पकड़ने के लिये ही फिर उसके ऊपर आकर मंडराने लगते थे, जिससे यह पता चल जाता था कि अब तारक की मृत्यु निकट ही है। तभी एक काजल के समान काला, भयंकर फुंकार मारता हुआ विशाल नाग आकर उसके ध्वज से लिपट गया। उस नाग का फन मणि के प्रकाश में खूब जोर से चमक रहा था। तभी उसके रथ के धुरे में से अकारण ही प्रचंड आग निकलने लगी, जिसने उसके रथ के घोड़ों के बाल, कान और चौंरियों को झुलसा दिया और धनुष, बाण तथा तूणीर को जला दिया। जब सब प्रकार के अनेक अपशकुनों को देखने के बाद भी वह मदान्ध तारक निरुत्साहित न हुआ और युद्ध के लिये आगे बढ़ता ही गया। तब आकाशवाणी हुई—

"ओ मदान्ध तारक, अपने बाहुबल के घमण्ड में तू इन्द्र इत्यादि अन्य देवताओं के साथ आ रहे कुमार से युद्ध करने के लिये मत जा। जिस प्रकार ग्रीष्मऋतु के सूर्य का मुका-

बला अंधकार नहीं कर सकता, उसी प्रकार इस छह दिन के कुमार का सामना भी युद्ध में कोई नहीं कर सकता; तू तो उनसे लड़ ही क्या सकता है ? जिस कुमार ने दशों दिशाओं में फैले हुए और सैंकड़ों गगनचुम्बी शिखरों वाले क्रौंच पर्वत को भी अपने बाणों से भेद डाला है, उसके साथ युद्ध में तुम्हारा क्या मुकाबला ? जिन परशुराम ने महादेव से धनुर्वेद सीखकर युद्ध में इक्कीस बार राजाओं के रक्त-जल से अपने क्रोध की आग को बुझाया था, उन क्षत्रियों का विनाश करने वाले परशुराम को भी जिस कुमार से युद्ध करने का साहस नहीं होता, उसके साथ लड़ कर तू क्या प्राप्त कर सकता है ? इसलिये अब तू अपना अभिमान छोड़ दे। कुमार की शक्ति के सम्मुख मत जा; बल्कि अब तो उनकी शरण में जा और उसके बाद चिरकाल तक जीवित रह।"

इस आकाशवाणी को सुनकर तारकासुर को अत्यन्त क्रोध आया। यद्यपि वह अपने आतंक से तीनों लोकों को प्रकम्पित कर चुका था; परन्तु इस समय वह क्रोध से स्वयं कांपने लगा और आकाश की ओर मुँह करके कहने लगा—

रे आकाशविहारी देवताओ, यह तो बताओ कि क्या रे बाणों से हुए घावों की पीड़ा भूल गयी है, जो अब र के गुण बखानते हुए इस प्रकार की बकवास कर ' इस छह दिन के बालक के भरोसे तुम आकाश में ः शब्द में क्या बक-बक कर रहे हो, जैसे कातिक ाल कुत्ते भौंका करते हैं या रात में जंगलों में धूर्त

पशु बोला करते हैं ? तुम लोगों का साथ होने के कारण यह बेचारा बालक भी वैसे ही मारा जायगा, जैसे चोर का साथी होने के कारण सज्जन को भी दंड भुगतना पड़ता है। तो लो, मैं पहले तुम्हें मारता हूँ, और बाद में इसे देखूँगा।"

इतना कहकर उस असुर राज ने अपनी अत्यंत भयंकर विशाल तलवार क्रोध में आकर उठाई और उसके साथ ही देवताओं में ऐसी भगदड़ मच गई कि वे एक-दूसरे को कुचलते हुए बहुत दूर तक भागे चले गये। अब तारक ने घमंड के साथ बड़ी विकट से हँसी हँसी और उसने उस उत्कृष्ट तलवार को म्यान से बाहर निकाल लिया और अपने सारथी को आदेश दिया कि 'रथ को तुरन्त इन्द्र के सामने ले चलो।' सारथी ने मन के वेग से दौड़ने वाले उस रथ को आगे बढ़ाया और क्षण भर में तारकासुर सामने फैली हुई समुद्र के समान विशाल देव सेना के सम्मुख जा पहुँचा।

सामने देवताओं की उस विशाल सेना को देखकर संग्राम क्रीड़ा के खिलाड़ी तारकासुर की भुजाओं में आनन्द के मारे रोमांच हो आया। तारकासुर को सम्मुख देख कर इन्द्र की सेना के योद्धा बड़े वेग के साथ आगे बढ़े। क्योंकि युद्ध चाहने वाले लोग लड़ने का मौका आने पर विलम्ब थोड़े ही करते हैं। दैत्य सेना के वीर भी सामने खड़ी देव सेना के आगे जा पहुँचे और बाहें हिला-हिला कर जोर-जोर से अपना नाम ले लेकर शत्रुओं को ललकारने लगे। अपने सामने दैत्य सेना के उस महासमुद्र को फैला हुआ देखकर देवताओं के होश-

हवाश जाते रहे। परन्तु कुमार ने उस दैत्य सेना की ओर बहुत ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा। कुमार ने दैत्यों से डरी हुई देवसेना को अपनी प्रसन्नता भरी दृष्टि से देख कर अमृत-सा बरसाते हुए लड़ने का संकेत किया। कुमार को देखकर देवताओं का उत्साह बढ़ गया और इन्द्र इत्यादि देवता कहने लगे---"मैं समर में शत्रुओं को जीतूंगा" इत्यादि। श्रेष्ठ पुरुषों की संगति किसे बलवान नहीं बना देती ? दैत्यों और देवताओं के सैनिक योद्धा विजय की कामना से युद्ध में आ जुटे। उन्होंने अपने शस्त्र उठाये हुए थे और वैतालिक लोग उनके पराक्रम के गीत गा रहे थे। जब देवताओं और दैत्यों की सेनाओं के दो महासमुद्र एक-दूसरे से टकराने के लिए बढ़ चले, तो संसार में ऐसा भयंकर कोलाहल छा गया, मानो महाकाल के भोजन के लिये निमन्त्रण दिया जा रहा हो और उस कोलाहल के कारण ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के किनारे टूक-टूक होकर गिरने लगे।

सोलहवाँ सर्ग

इन्द्र और तारकासुर की सेनाएँ एक-दूसरे पर भयंकर अस्त्र शस्त्र छोड़कर घोर युद्ध करने लगीं। पैदल-पैदलों से भिड़ गये। रथी रथियों से, घुड़ सवार घुड़ सवारों से और हाथियों पर बैठे हुए योद्धा हाथियों पर बैठे सवार योद्धाओं से जा भिड़े। युद्ध के लिये सामने आने वाले वीरों के कुलों का नाम ले लेकर बैतालिक लोग उनका उत्साह बढ़ा रहे थे। युद्ध में लड़ने वाले योद्धा युद्ध के उत्साह में चारणों द्वारा गाये जाने वाले गीतों का बहुत थोड़ा ही भाग बीच-बीच में सुन पाते थे, नहीं तो उनका सारा ध्यान युद्ध में ही था। युद्ध के कारण उन्हें अत्यन्त आनन्द हो रहा था और उनके शरीरों के रोंगटे खड़े हो गये थे। जब दो योद्धाओं की आपस में मुठभेड़ हो जाती थी, तो वे खुशी से इतने फूल उठते थे कि उनके कवच भी टूट फूट जाते थे। वे दयाशून्य होकर तलवार चलाते थे, जिनसे कवच कट जाते थे। उन कवचों में से निकली हुई रुई आकाश में और सब दिशाओं में उड़ने लगी, जिससे आकाश और दिशाएं बूढ़े व्यक्तियों के बालों की भांति सफेद हो उठीं। जहां तहां खून से रंगी हुई वीरों की तलवारें सूर्य की तेज किरणों में बिजली की भांति झिलमिलाने लगीं। योद्धाओं ने क्रुद्ध होकर जो बाण छोड़े, वे आकाश में मुखों से लपटें फेंकते हुए

भयंकर साँपों की भाँति छा गये। धनुर्धर एक-दूसरे पर इतनी तेज़ी से बाण चला रहे थे कि वे बाण शत्रु के शरीर में से होकर निकल जाते थे और ज़रा सा भी खून लगे बिना ही पार जाकर भूमि में धँस जाते थे। कुशल योद्धा इस रणोत्सव में प्रसन्न होकर इस ढंग से बाण छोड़ते थे कि उनसे हाथियों की सूँड़ें तो कट कर पहले भूमि पर गिरती थीं और बाण बाद में। जब अग्नि की लपटें फेंकते हुए बाणों से आकाश बहुत अधिक भर गया, तो विमानों पर चढ़े हुए देवता पीछे हट गये, जिससे आग की लपटों से बच सकें। धनुर्धारियों ने इतने बाण चलाये कि उनसे घायल होकर सारा आकाश बाज़ के शब्द के बहाने से कराहने-सा लगा। कान तक डोरी खींच कर छोड़े गये बाण दूर-दूर तक इस प्रकार उड़ते चले जाते थे, मानो वे अपने घमण्ड में खिलखिला रहे हों। उस युद्ध-भूमि में सब ओर धूल भरी हुई थी, जो बादल के समान प्रतीत होती थी और योद्धाओं के हाथों में रक्त-रंजित तलवारें नाचती हुई बिजली की भांति चमक रही थीं। उस युद्ध-भूमि में योद्धाओं के चमकते हुए भोले ऐसे प्रतीत होते थे, मानो यम ने खून चाटने के लिये अपनी जीभ बाहर निकाली हुई हो। युद्ध भूमि के ऊपर आकाश में चक्र से लड़ने वाले योद्धाओं के चक्र सूर्य मंडल के समान चमकते हुए दिखाई पड़ रहे थे।

जब कोई बड़ा वीर सामने आकर युद्ध के लिये ललकारता था, तो कुछ लोग तो डर के मारे ही वाहनों पर से गिर पड़ते

थे और कुछ लोग आतंक के मारे मूर्छित हो जाते थे। कुछ लोग लड़ने को उत्सुक योद्धा के सामने आने पर आनन्द से पुलकित हो उठते थे। पर जब वह डर कर लौट जाता था, तो उन्हें दुःख होता था कि लड़ने का मौका हाथ से निकल गया। कई योद्धा अनेक योद्धाओं से युद्ध कर चुकने के पश्चात् ढूँढते हुए उन प्रतिद्वन्द्वियों के पास पहुँच जाते थे, जिनसे दो-दो हाथ करने का उन्होंने पहले से ही संकल्प किया होता था। जब चारों ओर मदोद्धत वीर लड़ने के लिये आ जुटते थे, तो सच्चे योद्धाओं की भुजाओं में आनन्द के कारण रोंगटे खड़े हो जाते थे।

जगह-जगह शस्त्रों से कटे हुए हाथियों के मस्तक पड़े थे। उनमें से निकल निकल कर गजमुक्ता युद्ध क्षेत्र में बिखर गये थे, जो ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे युद्ध क्षेत्र में बोये हुए कीर्ति के बीजों के अंकुर निकल आये हों। यद्यपि हाथीवान हाथियों को वश में रखने का बहुत यत्न करते थे, फिर भी वीरों की डरावनी हुंकार को सुनकर हाथी भाग ही खड़े होते थे। जिन हाथियों पर बैठे हुए योद्धा मर गये थे, वे नीचे की ओर बहती हुई रक्त की नदियों में स्नान कर के लाल हो उठे। रक्त की अपार नदियों में ऊँचे-ऊँचे रथों पर बैठे हुए योद्धा भी हुंकार करके प्रतिद्वन्द्वी पर तीर छोड़ रहे थे। ऐसे भी अनेक वीर थे, जो अपना सिर कट जाने पर घोड़े से नीचे गिरते-गिरते भी तलवार से शत्रु का सिर काट लेते थे। योद्धाओं के शस्त्रों से कट जाने के बाद भूमि की ओर गिरते

हुए सिर भी क्रोध से दाँत पीसते हुए शत्रु की ओर दौड़ते थे। बहुत से योद्धाओं के सिर अर्ध-चन्द्राकार बाणों से कट कर ज्यों ही भूमि की ओर गिरने लगे, त्यों ही बाज़ों ने उन्हें भूमि पर गिरने से पहले ही अपने पंजों में पकड़ लिया और उन्हें लेकर आकाश में उड़ गये। इस प्रकार के बाज़ों से सारा आकाश भर गया।

क्रोध में भरे हुए पैदल सैनिकों और घुड़सवारों ने हाथियों के दाँतों पर चढ़-चढ़ कर हाथियों पर बैठ कर लड़ने वाले योद्धाओं को भालों से छेद-छेद कर मार डाला। अपने ऊपर बैठे हुए योद्धाओं के मर जाने के बाद हाथी इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगे, मानो प्रलय काल की वायु में पर्वत उड़े फिर रहे हों। जब दो हाथी एक-दूसरे से आ भिड़ते थे, तो उन पर बैठे हुए योद्धा भी शस्त्रों से एक-दूसरे के प्राण ले लेते थे। जब दो हाथी क्रुद्ध होकर एक-दूसरे से टक्कर मारते थे तो उनके दाँतों की रगड़ से ऐसी आग निकलने लगती थी, कि आसपास पड़े हुए मृत योद्धाओं के देह जल उठते थे। जिन पैदल सैनिकों को अपनी सूँड़ों से पकड़कर क्रुद्ध गजराज आकाश में उछाल देते थे, वे भी भूमि पर गिरने से पहले अपने सेनापतियों के देखते-देखते तलवार मार कर हाथी की जान ले लेते थे। जिन पैदल सैनिकों को हाथियों ने ज़ोर से ऊपर की ओर उछाल दिया था, उनके प्राण तो स्वर्ग में चले गये और उनका शरीर भूमि पर आ गिरा।

यद्यपि योद्धा लोग इतने ज़ोर से तलवार चलाते थे कि

वे तलवारें हाथी की सूंड़ों को काट कर भूमि में आ लगती थी, फिर भी उन्हें पूरा सन्तोष न होता था। जिन पदातियों को हाथियों ने उछालकर स्वर्ग पहुँचा दिया था, उन्हें अपना प्रिय बनाने के लिये देवांगनाएँ अधीर हो उठती थीं। जब घुड़सवार धनुर्धारी किसी गजारोही को तीर मारकर मूर्छित कर देते थे, तो वे देर तक इस प्रतीक्षा में खड़े रहते थे कि वह फिर होश में आये, तो उससे युद्ध करें।

एक हाथी ने एक पैदल को मारना चाहा। पैदल सैनिक ने पहले तो उसकी सूंड काट डाली और फिर उसके दाँतों को उखाड़ने के लिये उसके दाँतों पर चढ़ कर बैठ गया। एक और पैदल सैनिक तेजी से शत्रुओं की सेना में पहुँचा और अपनी तलवार से एक हाथी के दोनों दाँतों को जड़ से काट कर वापस लौट आया। एक योद्धा को हाथी ने अपनी सूंड में लपेट लिया। परन्तु उसने तलवार मार कर हाथी का काम तमाम कर दिया और स्वयं अछूता बच गया। एक अश्वारोही दूसरे अश्वारोही की छाती में भाला मारा और उसे गिरते देख इतना प्रसन्न हुआ कि प्रतिद्वन्द्वी ने जो उस पर भाला फैंका था उसके अपनी छाती में खुभ जाने का उसे पता भी न चला।

एक और अश्वारोही घोड़े पर बैठा था। शत्रु ने भाला मार कर उसके प्राण ले लिये। परन्तु मर जाने पर भी वह अपना भाला हाथ में उठाये जीवित व्यक्ति की भांति बैठा रहा और घोड़ा उसे लिये जहाँ-तहाँ फिरता रहा।

एक ओर अश्वारोही के प्राण शस्त्र से आहत होने के कारण निकल गये और वह मरकर भूमि पर गिर पड़ा। उसका घोड़ा उसके पास ही आँखों में आँसू भर कर खड़ा रहा और किसी प्रकार वहाँ से हिलता ही नहीं था। एक अश्वारोही को शत्रु ने एक बड़ा तेज़ भाला मारा। इससे उसे इतना क्रोध आया कि वह बेहोश नहीं हुआ और गिरते-गिरते भी उसकी यह इच्छा हो रही थी कि शत्रु मिल जाय तो उसे मार डालूं। दो अश्वारोही एक-दूसरे का भाला लगने के कारण भूमि पर गिर पड़े और भूमि पर पड़े-पड़े भी क्रोध से एक-दूसरे से बाल खींच-खींच कर हाथापाई करने लगे।

रथों में बैठे हुए कई रथी योद्धा बाणों से मर जाने के बाद भी इस प्रकार धनुष उठाये बैठे थे कि जीवित से दिखाई पड़ते थे। जब कोई रथी शस्त्र से मूर्छित हो जाता था, तो शत्रु उस पर दुबारा वार नहीं करता था और युद्ध के लोभ में तब तक खड़ा प्रतीक्षा करता रहता था, जब तक वह फिर सचेत न हो जाय।

दो रथी आपस में एक-दूसरे को मारकर स्वर्ग जा पहुँचे और वहाँ फिर एक अप्सरा के लिये आपस में लड़ने लगे। दो अन्य रथी एक-दूसरे के सिरों को अर्धचन्द्र बाणों से काट कर स्वर्ग पहुँच गये और आकाश में से उन्होंने अपने धड़ों को रणभूमि में नाचते हुए देखा।

समरभूमि में खून के कारण कीचड़ और फिसलन हो गई थी फिर भी शस्त्र उठाये हुए अनेक धड़ नाचे ही जा रहे

थे। उनके साथ-साथ युद्ध वाद्य बज रहे थे और प्रेतनियां गीत गा रही थीं। इस प्रकार जब देव और दैत्य सेनाओं का युद्ध प्रारम्भ हो गया और रक्त की नदी के किनारों पर ही हाथियों के समूह डूबने लगे, तब लाल आँखें किये और क्रोध से भौहें टेढ़ी किये दैत्यराज तारकासुर युद्ध की इच्छा से दिक्पालों के सम्मुख आकर खड़ा हो गया।

सत्रहवां सर्ग

दैत्यराज तारकासुर को युद्ध करने के लिये उत्सुक देखकर युद्ध के लिये सारे दिक्पाल एक जगह आ जुटे। तारकासुर ने सब ओर बाण बरसाकर दिशाओं में अन्धकार फैला दिया। जैसे वर्षाकाल में काले बादल पर्वतों को जल से भिगो देते हैं, उसी प्रकार देवताओं का शत्रु तारक भयंकर अट्टहास करता हुआ देवताओं के ऊपर बाण बरसाने लगा। इन्द्र इत्यादि देवताओं और दिक्पालों के बाणों ने तारकासुर के बाणों को उसी प्रकार काट डाला, जैसे गरुणों के समूह सांपों के दल को काट डालते हैं। देवताओं ने तारक पर जो बाण चलाये, उनको उसने अपने नामांकित बाणों से काट डाला। उसके चमकते हुए फलक वाले बाण सब दिशाओं और आकाश में छा गये। देवसेना द्वारा चलाये गये बाण उसी प्रकार लुप्त हो गये, जैसे अग्नि के ऊपर रखा हुआ घास-फूस जलकर लुप्त हो जाता है। उसके बाद तारक ने गुस्से से जलते हुए और कई बाण छोड़े, जो इन्द्र इत्यादि बड़े-बड़े देवताओं के गले में जाकर भयंकर सर्पों की भांति लिपट गये। उन नागपाशों में फँस जाने के कारण देवताओं का सांस घुटने लगा और वे युद्ध से मुंह फेरकर इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिये भागकर कुमार के पास पहुँचे। ज्योंही कुमार ने अपनी दृष्टि उन

नागपाशों पर डाली, त्योंही इन्द्र इत्यादि देवता स्वयं उन पाशों से छूट गये और उन्होंने कुमार की बहुत स्तुति की।

तब तारक और भी अधिक क्रुद्ध हुआ और सारथी से कहने लगा—"देखो, मैंने इन्द्र इत्यादि देवताओं को बांध लिया था, परन्तु वे इस महादेव के पुत्र कुमार की दृष्टि मात्र से मुक्त हो गये हैं। अब मैं इन्हें छोड़ कर पहले उस कुमार को ही ठिकाने लगा दूँ: इसलिये रथ को तुरन्त कुमार के सामने ले चलो। मैं ज़रा युद्ध के लिये उतावले उस कुमार को देखूँ तो।"

सारथी ने रथ को आगे बढ़ाया और गरजते हुए मेघों के समान गंभीर शब्द करता हुआ रथ शत्रुओं की सेना को दलता हुआ, मांस, हड्डी और लोहू के कीचड़ में से बढ़ता हुआ आगे चलने लगा। प्रलयकाल की आंधी में उड़ते हुए हिमालय के समान उस रथ को भयंकर शब्द के साथ आते हुए देख कर देवताओं की सेना भय से कांपने लगी और उसमे बड़ी खलबली मच गई। देवताओं की सेना को घबराया हुआ देखकर, भयंकर धनुष हाथ में लिये तारकासुर युद्ध के लिये उत्कंठित कुमार के पास पहुँच कर उससे कहने लगा—"हे तपस्वी महादेव के बालक, तू अपनी भुजाओं का घमंड त्याग दे और इन्द्र का साथ छोड़ दे। तेरी यह छोटी-छोटी कोमल भुजाएं हैं। ये शस्त्र तो इन भुजाओं के लिये अनुचित भारस्वरूप ही है। तू महादेव और पार्वती का इकलौता पुत्र है। क्यों व्यर्थ ही मेरे भयंकर बाणों से अपनी जान देता है ? युद्ध छोड़ कर

भाग जा और जल्दी से दौड़कर अपने माता-पिता की गोद में जा छिप। कुमार, तू स्वयं भलीभांति विचार करके शीघ्र ही इस इन्द्र का साथ छोड़ दे। यह स्वयं तो अथाह जल में पत्थर की नौका की भांति डूब ही रहा है और साथ ही तुझे भी डुबाने लगा है।"

तारक के इन वचनों को सुनकर कुमार की आँखें खिले हुए कमल के समान लाल हो उठीं और वह अपने धनुष की ओर देखते हुए तथा अपनी सेल पर हाथ फेरते हुए बोले— "दैत्यराज, तुमने घमंड में आकर जो कुछ कहा है, वह ठीक है परन्तु मैं आज तुम्हारा बाहुबल देखूँगा। शस्त्र सम्हालो और अपने धनुष पर डोरी चढ़ा लो।"

कुमार के इतना कहने पर तारक ने क्रोध से अपना निचला ओठ चबा लिया और बोला—"तुम अपने भुजबल के घमंड से युद्ध करने आये हो। तो अब मेरे बाणों को झेलो, जिनसे मैं शत्रुओं की पीठ को चलनी करता रहा हूँ।"

उसके बाद उसने अपने उस धनुष पर डोरी चढ़ा ली, जिसे देखकर ही शत्रुओं को डर लगने लगता था और उसपर तीखे बाण चढ़ाकर क्रुद्ध सर्पों के समान बाण कुमार की ओर चलाने लगा। तारक कान तक खींच-खींच कर धनुष से ढेर के ढेर बाण चलाने लगा। उनकी चमक से आकाश और दिशाएं जगमगा उठीं। तारक के धनुष से छूटे हुए बाणों से ऐसा अन्धकार छा गया कि कुमार दिखाई पड़ने बन्द हो गये। तारक के धनुष की टंकार सुनकर योद्धाओं के हृदय भयभीत हो उठे।

तब कुमार ने अपने धनुष पर बाण चढ़ा कर बाण छोड़ने शुरू किये, जिससे तारक के बाण एकदम ही कट गये। तारक के बाणों की मेघमाला के फट जाने पर कुमार सूर्य के समान चमकने लगे। जब कुमार का तेज अधिक बढ़ता हुआ प्रतीत हुआ, तो तारक ने युद्धक्षेत्र में माया का प्रयोग प्रारम्भ किया। उसने समझ लिया कि शस्त्रों द्वारा युद्ध में कुमार को जीत पाना कठिन है, तो उसने भयंकर हँसी हँसते हुए क्रोध के साथ विजय की इच्छा से धनुष पर वायव्य अस्त्र चढ़ा लिया।

उस अस्त्र के धनुष पर चढ़ते ही प्रलय काल का सा भयंकर हरहराता हुआ अंधड़ चलने लगा। सब ओर इतनी धूल उड़ी कि दिशाएं और आकाश उससे ढक गये। सूर्य दिखाई पड़ना बन्द हो गया। उस तीव्र वायु से देव सैनिकों के कुन्द के समान उजले श्वेत छत्र उड़ गये और बादलों के समान रंग वाली धूल से भरे आकाश में वे उड़ती हुई हँस पंक्तियों के समान दिखाई पड़ने लगे। देवताओं की सेना की ध्वजाएँ टुकड़े-टुकड़े होकर नवमल्लिका के फूलों की भांति आकाश में उड़ गईं और वहाँ ऐसी प्रतीत होने लगीं मानो आकाश गंगा के जल हजारों तरंगें उछलता हुआ उड़ रहा हो। उन तीव्र आंधी से देवताओं की सेना के हाथियों के दल के दल आकाश में उड़-उड़ कर भूमि पर गिरने लगे, मानो इन्द्र के द्वारा काटे गये पर्वतों के पंख भूमि पर गिर रहे हों। उस प्रचंड वायु से रथों के घोड़े गिर पड़े, रथ हवा

में उड़ने लगे, सारथि दूर जा पड़े, देवसेना के अश्वारोही घोड़ों समेत बिना किसी शस्त्र की चोट खाये ही भूमि पर गिरने लगे। तारक द्वारा चलाये गये उस भयंकर वायव्य अस्त्र से वायु की ऐसी घूमर-घेरियां बनने लगीं, जिनमें पड़ कर देवसेना के सैनिक उड़ते हुए बहुत ऊँचाई तक पहुँच जाते थे और फिर एकाएक भूमि पर आ गिरते थे। सारी सेना घबराकर रोने और चिल्लाने लगी।

जब कुमार ने देवसेना को वायव्य अस्त्र से इस प्रकार विकल होते हुए देखा तो उन्होंने अपना विलक्षण दिव्य प्रभाव दिखलाया। देखते-देखते सारी देवसेना फिर स्वस्थ हो गई और उत्साह के साथ युद्ध करने लगी। यह देखकर तारक को और भी अधिक क्रोध चढ़ा और उसने आग्नेय अस्त्र छोड़ा।

उस अस्त्र के छूटते ही सारे आकाश में वर्षाकाल के बादलों के समान काले धुएं के बादल उठने लगे। नील कमलों के समान रंग वाले उस धुएं से सब दिशाएँ ऐसी भर गईं कि सब कुछ दिखाई पड़ना बन्द हो गया। धुएँ से आकाश भर जाने के कारण राजहंसों को यह भ्रम हुआ कि वर्षाऋतु आ गई और वे प्रसन्न होकर मानसरोवर की ओर उड़ चले। देवसेना के बीच में प्रलयकाल की अग्नि के समान भयंकर आग सब ओर जलने लगी। उस अग्नि की लपटों से सारा आकाश और सब दिशाएँ भूरे रंग की हो उठीं। उस आग का धुआं काली-काली घटाओं के समान प्रतीत हो रहा था

और उसमें आग की लपटें कौंधती हुई बिजलियों के समान दीख रही थीं। उस भयंकर आग्नेय अस्त्र की लपटों में जलती हुई देवसेना बहुत ही विकल होकर कुमार के समीप पहुँची।

कुमार ने जब देवसेना को अत्यंत प्रचंड अग्नि से व्याकुल देखा तो उन्होंने मुस्कराते हुए वारुणास्त्र अपने धनुष पर चढ़ा लिया। उस वारुणास्त्र के छूटते ही आकाश में बादलों की भयावनी घटायें घुमड़ उठीं जो देखने में अन्धकार के समूह सी प्रतीत होती थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रलयाग्नि का घना धुआं आकाश में भर उठा हो। उन घन-घटाओं की गर्जन से पर्वतों के शिखर टूट-टूट कर गिरने लगे। आकाश में बादलों में भयंकर कड़कड़ाहट के साथ बिजली चमकने लगी, जिससे सब दिशाएँ भूरी हो उठीं। वे विद्युत् ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो प्रलय काल में संहार के लिए निकले हुए महाकाल की लपलपाती हुई जीभ हों। भयंकर काल-रात्रि के समान काले बादलों की घटा जल से भर कर आकाश में इतनी घनी छा गई कि कुछ भी दिखाई पड़ना बन्द हो गया और उसमें रह-रह कर बिजली कौंधने लगी। और निरन्तर गरज-गरज कर बादल मुसलाधार बरसने लगे। उस वर्षा से अग्नि देखते-देखते बुझ गई।

जब दैत्यराज तारकासुर ने अग्नि को बुझते देखा तो उसका मुख क्रोध से काला पड़ गया; और उसने कान तक धनुष की डोरी खींच-खींच कर तेज बाण चलाने प्रारम्भ किये। उसके

भय से सारी देवसेना भाग खड़ी हुई और तारक ने कुमार को बाणों से आहत कर दिया। कुमार ने भी अपने बाणों से तारक के बाणों और धनुष को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया, जैसे योगी लोग अपने यम, नियम आदि व्रतों से सांसारिक विषयों को नष्ट कर देते हैं।

तब असुरराज तारक का मुख क्रोध से बहुत भयंकर हो उठा। उसकी भौंहें टेढ़ी हो गई और क्रोध से जलता हुआ वह रथ से उतर कर हाथ में भयंकर तलवार उठाये कुमार की ओर दौड़ा। जब कुमार ने उस दैत्यराज को अपनी ओर आते देखा तो उन्होंने आनन्द से हँसते हुए कालानल के समान अपनी भयंकर सेल (शक्ति) उस पर छोड़ी। उस शक्ति के छूटते ही सारी दिशाएँ और आकाश चमक से उद्भासित हो उठे और वह शक्ति जाकर उस भयंकर दैत्यराज की छाती में लगी। उसके साथ ही दिग्पालों की आँखों से आनन्द के और दानवों की आँखों से शोक के आंसू बह निकले।

उस दैत्यराज तारक को शक्ति की च.ट से निष्प्राण होकर गिरते हुए देखकर इन्द्र इत्यादि देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ। वह तारक इस प्रकार गिरा मानो प्रलय वायु से पर्वत का कोई शिखर टूट कर गिर पड़ा हो। जब दैत्यराज तारक निष्प्राण होकर पर्वत के शिखर के समान भूमि पर गिरा तब उसके भार के कारण पृथ्वी नीचे को धसकने लगी और शेषनाग ने बड़ी कठिनाई से अपने फणों पर उसे जैसे-तैसे सम्हाला।

उसी समय महादेव के पुत्र कुमार के सिर पर कल्पवृक्ष के फूल बरसने लगे। ये फूल आकाश गंगा के जल से धुले हुए थे और उनकी सुगन्ध के लोभ में भ्रमरों की पंक्तियां उन फूलों के पीछे-पीछे चली आ रही थीं। आनन्द के मारे इन्द्र इत्यादि सभी देवता इतने फूल उठे कि उनके कवच टूट फूट गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कुमार के बाहु-बल की जी भर कर प्रशंसा की।

इस प्रकार जब महादेव के पुत्र विजेता कुमार ने तीनों लोकों के हृदय में काँटे के समान गड़े हुए तारक को निकाल कर नष्ट कर दिया तब इन्द्र फिर स्वर्ग के राजा बन गये और देवता लोग उनके चरणों में सिर झुका-झुका कर प्रणाम करने लगे।